thearyasamaj.org

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् अपघ्नन्तो अरावणः॥

आर्य संकल्प

(बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा का मासिक मुख-पत्र)

वर्ष-37 | अक्टूबर-नवम्बर संयुक्तांक | अंक-9

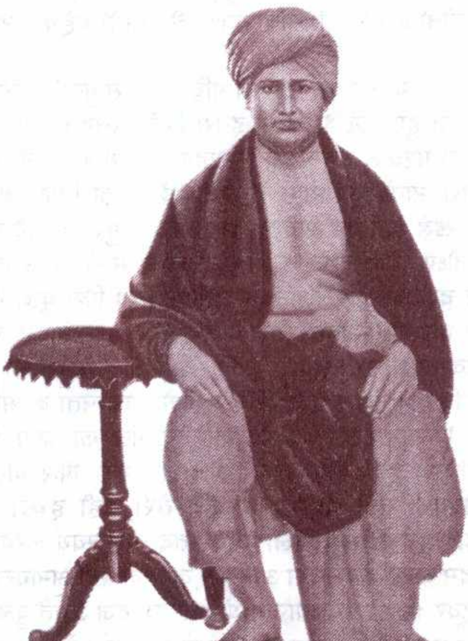

महर्षि दयानन्द सरस्वती

बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा
कार्यालय : श्री मुनीश्वरानन्द भवन, नयाटोला, पटना-4 (बिहार)

thearyasamaj.org

आर्य संकल्प

सम्पादक
रमेन्द्र कुमार गुप्ता
मो. 9334184136

सह सम्पादक
संजय सत्यार्थी
मो. 9006166168
प्रेम कुमार आर्य
मो. 9570913817

सम्पादक मंडल
पं० व्यासनन्दन शास्त्री
श्री बिन्देश्वरी शर्मा
मो. 8544088138

संरक्षक
गंगा प्रसाद
सभा प्रधान

कोषाध्यक्ष
सत्यदेव गुप्ता
स्वत्वाधिकारी एवं प्रकाशक
बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा
श्री मुनीश्वरानन्द भवन
नयाटोला, पटना–800 004
दूरभाष : 07488199737
E-mail_arya.sankalp3@gmail.com
सदस्यता शुल्क
एक प्रति : 15/-
वार्षिक : 120/-

मुद्रक :
जय उमा प्रिन्टर्स
मो. 9430246879

संपादकीय

धन्य ऋषि का स्मारक

वेदोद्धारक जगत् गुरु महर्षि दयानन्द सरस्वती जब संसार को वैदिक ज्ञान से आलोकित कर रहे थे, तब उस भुवन भास्कर को रूढ़ी बाद के बादलों से ढक लेने का असफल प्रयास किया गया। फिर भी ऋषि दयानन्द रूपी सूर्य अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि कर आर्य समाज का परचम लहराया। जब दम्भी, स्वार्थी, पाखण्डी लोग ऋषि का सामना नहीं कर सके तो प्राण लेने पर उतारू हो गये। अन्ततः 29 सिम्बर 1883 ई॰ को ऋषिवर को दूध में विष पिलाने में सफल हो गये। विष के कुप्रभाव से ऋषि का रोग बढ़ता गया। अब इस की सूचना आर्य समाज लाहौर को मिली, तब वहाँ की अंतरंग सभा ने जीवन दास और गुरुदत्त विद्यार्थी को ऋषि की सेवा शुश्रुषा के लिये भेजने का निश्चय किया। 28 अक्टूबर को दोनों अजमेर (भिनाय राजा की कोठी) पहुँच कर स्वामी जी की सेवा में लग गये।

पं॰ गुरुदत्त ने जिस भक्ति भाव से पुत्रवत सेवा की, उससे सभी लोग बहुत प्रभावित हुए। ऋषि को भी इनसे विशेष स्नेह हो गया। 30 अक्टूबर को शाम चार बजे के पश्चात् स्वामी जी ने बाहर से आये सज्जनों! को बुलाया और सबकी ओर निहारा, मानो झूक भाषा में उपदेश दे रहे हों ! फिर शाम पाँच बजे सभी भक्तों को पीछे खड़े होने का आदेश दिया। केवल गुरूदत्त को कमरे में ठहराये रखा। ऋषि की तीक्ष्ण दिव्य दृष्टि ने आर्यों के समूह में से इस रत्न को पहचान लिया था। तब सभी दरवाजे और रोशनदान खुलवा दिये फिर पूछा कि कौन सा पक्ष, क्या तिथि और वार है? मोहन लाल, विष्णुलाल पाण्डया ने उत्तर दिया कि कृष्ण पक्ष, अमावस्या और मंगलवार है। फिर छत और दीवारों की ओर देखा तथा वेद मंत्रों का पाठ किया। मुखमण्डल पर एक विशेष प्रसन्नता के साथ पहले ईश्वर का गुणगान और फिर गायत्री तथा विश्वानिदेव मंत्र का जाप किया। थोड़ी देर के लिये समाधिस्थ हुए। नेत्र खोले, सीधे लेट गये, फिर बोले **"हे दयामय सर्वशक्ति परमेश्वर! तेरी यही इच्छा है। तेरी यही इच्छा है! तेरी इच्छा पूर्ण हो। आहा! तूने अच्छी लीला की।"** तदनन्तर स्वयं करवट बदली। सांस को रोककर एकदम वाहर फेंक दिया और बस कार्तिक बदी अमावस्या, विक्रमी सम्वत् 1940 (30 अक्टूबर 1883) मंगलवार सायं काल छः बजे अमृत पुत्र ने स्वेच्छा से पिता की गोद में स्थान पा लिया। मौत की मौत हो गयी और वे अमर हो गये। भक्त वेचारे रोते रह गये, उनका तो सर्वस्व लुट चुका था, दीपावली के चेहरे को शोक ने गहरे काले अंधेरे के आवरण से ढक लिया था, लाख दीप जलाये पर अब तक अंधेरा दूर न हो सका। ऋषि दयानन्द के देहावसान पर शोक समाएँ हुई। गुरु दत्त विद्यार्थी और जीवन दास भी अजमेर से लाहौर लौट आये। तब 6 नवम्बर 1883 को लाहौर आर्य समाज की अंतरंग सभा की बैठक हुई जिसमें दयानन्द एंग्लो वैदिक स्कूल की स्थापना करने का निश्चय किया गया।

महान ऋषि का स्मारक स्थापित करने के लिये 8 नवम्बर वीरवार सायं

thearyasamaj.org

आर्य संकल्प

-: सूची :-

क्रम	विवरण	पृष्ठ संख्या
1.	सम्पादकीय	
2.	वेद मंत्र	1
3.	वेद प्रवचन	2
4.	अंधविश्वास-निर्मूलन	4
5.	अग्नि सुरक्षा	13
6.	संसद की दीवारों	20
7.	ज्ञान से मानव	24
8.	ऋषि दयानन्द	26
9.	आश्रम व्यवस्था	28
10.	आस्था के दलदल में	34
11.	महर्षि का वेद	37
12.	समाचार	40

इस पत्रिका में दिये गये लेख लेखकों के अपने विचार हैं, इससे सम्पादक का कोई सम्बन्ध नहीं है।

अक्टूबर-नवम्बर संयुक्तांक

आलसी को सफलता नहीं

न पञ्चभिर्दशभिर्वष्ट्यारभं नासुन्वता सचते पुष्यता चन।
जिनाति वेदमुया हन्ति वा धुनिरा देवयुं भजति गोमति व्रजे॥

(ऋग्वेद 5/34/5)

पदार्थ- जो मनुष्य (**असुन्वता**) पुरुषार्थ को नहीं करता और (**पञ्चभिः**) पाँच इन्द्रियों (**च**) और (**दशभिः**) दश प्राणों से शुभ कर्म को (**आरभम्**) आरम्भ करने की (**न**) नहीं (**वष्टि**) कामना करता, (**पुष्यता**) पोषण करनेवाले परमेश्वर, विद्वानों, सज्जनों से (**चन**) और (**न**) नहीं (**सचते**) सम्बन्धित नहीं होता, वह (**जिनाति**) अपमानित होता है। (**वा**) वा [इसके विपरीत] जो (**अमुया**) इस प्रकार जानकर आलस्य का (**हन्ति**) नाश करता है, (**वा**) वा (**धुनिः**) ईश्वर-दण्ड से भय मानता है, (**गोमति**) बहुत गौओं के (**व्रजे**) निवास-स्थान में (**देवयुम्**) परमेश्वर, विद्वानों सज्जनों का (**आ**) सब प्रकार [तन, मन, धन] से (**भजति**) भक्ति, आदर करता है, वह मनुष्य (**इत**) ही सब (**वेदम्**) वेद-ज्ञान और सुखों को प्राप्त करता है॥

भावार्थ- अपने सामर्थ्यानुसार ईश्वर-उपासना, शुभ कर्म और विद्वानों की सन्गति-सेवा न करनेवाला मनुष्य दुःख को प्राप्त करता है, किन्तु ईश्वर-उपासना और अपनी सामर्थ्यानुसार शुभकर्म करनेवाला, गौओं की सेवा करनेवाला तथा विद्वानों का सत्कार और उनकी सेवा करनेवाला मनुष्य सब प्रकार सुख-भोग करता है।

काव्यरूपान्तरण-

पञ्चेन्द्रिय दश प्राणों से जो, शुभ कर्मों को नहीं करे।
नहीं सफलता उसको मिलती, अपमानित हो जिया करे ॥ 1 ॥
नहीं आलसी जो नर होता, कर्मश्रेष्ठ करता जाता।
गो, विज्ञों की सेवा करता, जीवन में सब सुख पाता ॥ 2 ॥

डॉ. वेद प्रकाश, मेरठ

thearyasamaj.org

वेद प्रवचन

आचार्य ज्ञानेश्वरार्य, रोजड़

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बृहस्पतिमें तद्दधातु। शन्नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः।।

यजुर्वेद 36/3

शब्दार्थ- यत् मे - जो मेरी, **छिद्रम्** - कमी है, **चक्षुषः**- आँख आदि इन्द्रियों की, **हृदयस्य**- बुद्धि की, **मनसः व**- अथवा मन की **अति तृण्णम्** - दोष-विकृति है, **बृहस्पति** - हे संसार के पालनहार, **मे** - मेरी उन सभी कमियों को, **दधातु**- ठीक कर दो, **भुवनस्य यः पति** - संस्कार का जो स्वामी है वह, **नः** हमारे लिए, **शम्**- कल्याणकारी, **भवतु** - होवे।

भावार्थ- हे जीवन दाता ! मैंने गीता, रामायण, दर्शन, उपनिषद्, वेद आदि ग्रन्थों को पढ़ा, किन्तु मन की पुस्तक को तो कभी खोलकर देखा ही नहीं। मन में उठने वाली अनिष्ट पापवृत्तियों की ओर तो मैंने कभी दृष्टि ही नहीं डाली। अन्तःकरण में कितने बुरे-बुरे विचार उत्पन्न होते है। इनकी पूरी गणना कभी की ही नहीं। हे देव! मैं न देखने योग्य को देखता हूँ न सुनने योग्य को सुनता हूँ, न खाने योग्य को खाता हूँ, न भोगने योग्य को भोगता हूँ, न विचारने योग्य को विचारता हूँ। न जाने इस जीवन में कितने घण्टे, कितने दिन, कितने सप्ताह, कितने वर्ष तक इन क्लिष्ट वृत्तियों को उठाता रहा हूँ। न जाने कितना पाप संग्रह कर लिया है। जब इन सबका आंकलन कर रहा हूँ तो शरीर कांप उठता है, मन घबराने लगता है और मेरी आत्मा अशान्त हो जाती है।

शान्त एकान्त स्थान में आँखें बन्द करके अन्तःकरण में झांकता हूँ तो पापों की गठड़ियाँ भरी हुई प्रतीत होती है। इन पापवृत्तियों ने कुसंस्कारों के चट्टानों की कितनी ऊँची तह जमा दी है और ये चट्टाने इतनी सुदृढ़ हो गयी है कि सामान्य सत्संग, उपदेश, स्वाध्याय, आत्मविश्वास व निदिध्यासन से किञ्चित् मात्र भी उखड़ती हुई प्रतीत नहीं होती है।

हे जीवन के स्वामी प्रभुदेव। इन अविद्या, अनीति, कुसंस्कारों के पहाड़ों व चट्टानों को बनाने वाला मै ही हूँ मैंने ही इन संस्कारों की प्रवृद्धि की, इनको पाला-पोषा है, इनकी रक्षा की है। इनसे अधर्म, अन्याय, अत्याचार करता रहा हूँ और सतत् जीवन में भय, चिन्ता असन्तोष, बन्धन, दुःखों की अनुभूति करता रहा हूँ। किन्तु अब मैं इस कुप्रवृत्तियों वाले जीवन से ऊब गया हूँ। प्रभो! अब सच्ची श्रद्धा, आस्था, विश्वास के साथ आपकी शरण में आया हूँ। आज से मैं सर्वात्मा समर्पण करता हूँ और गद्-गद् हो कर आपसे विनती करता हूँ कि बुरा देखने, बुरा सुनने, बुरा

thearyasamaj.org

विचारने की जो मेरी विषैली पापवृत्तियाँ हैं उनको समाप्त कर दो।

जब मैं एकान्त में जा कर आत्मनिरीक्षण करता हूँ तो पाता हूँ कि कैसे मैं मूढ़, छल, कपट का आश्रय लेकर अपने स्वार्थ के लिए औरों को छलता रहा हूँ, उन्हें धोखा देता रहा हूँ। जो मुझे अपना हितैषी मानते हैं, मुझे भला व्यक्ति समझते हैं, अपना आत्मीय मानते हैं, सच्चा मित्र, भाई, सहयोगी, पवित्र, श्रेष्ठ सज्जन, परोपकारी मानते हैं उन्हीं को मैं धोखा देता रहा हूँ। प्रभो! मैं अन्दर से ऐसा नहीं हूँ जैसा लोग मानते हैं, समझते हैं। मैं तो उनके विचारों, मान्यताओं से विपरीत बूरा हूँ, स्वार्थी हूँ, ढोंगी हूँ, पाखण्डी हूँ, बहुरुपिया हूँ। हे अन्तर्यामी ! आप तो जानते ही हैं कि मैं इन सब को धोखा देता आया हूँ। आपसे क्या छिपा हुआ है।

किन्तु अब मैं इन सब दुष्ट प्रवृत्तियों और अनिष्ट कुवासनाओं के परिणामों, प्रभावों व फलों का अनुमान लगाकर सिहर जाता हूँ। अब इन समस्त चेष्टाओं को एकदम समाप्त करना चाहता हूँ। इनके उद्‌गम कारणों को समूल उखाड़ देना चाहता हूँ। हे महान् गुणकर्म स्वभाव के सागर ! हे जगत् पिता ! आपसे विनम्र प्रार्थना है कि नेत्र, श्रोत्र, मन, वाणी, हस्त, पाद, उपस्थ आदि समस्त ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों की कुप्रवृत्तियों को अवरुद्ध करने का साहस, बल, परिश्रम मेरे में उत्पन्न कर दो। कोई भी विचार, वाणी, कर्म की वृत्ति अशुभ न हो, अहितकर न हो। यह सब आपकी सहायता के बिना असम्भव है। अत: आपसे प्रार्थना है कि तत्काल इतना ज्ञान-विज्ञान, बल, साहस, पराक्रम मुझे प्रदान करें कि मैं इन न्यूनताओं, दोषों, त्रुटियों, पाप वासनाओं को समाप्त कर दूँ और पवित्र बनकर आपके दर्शन के पात्र बन जाऊँ। यही आप से विनम्र प्रार्थना है। इसे आप अपनी कृपा से ही शीघ्र पुरी करो।

पेज 36 का शेष....

5. आज भारत दुनियां में गो माँस का निर्यातक एक प्रमुख देश बन गया है जिस वजह से अमृत समान दूध देने वाली गायों की हत्या प्रतिवर्ष एक करोड़ की हो गई हैं।

6. आज पूरे देश में हत्या लूट, बलात्कार और अपहरण का बाजार गर्म है और माँस और शराब का भयंकर सेवन हो रहा है, जिस वजह से पूरे समाज में अपराध का बोलवाला है।

7. आज इस देश में बेजान नारी मूर्त्तियों की तो पूजा हो रही है पर जीवन्त नारी को भोग की वस्तु के अलावा कुछ नहीं समझा जाता और रोमांस अपने चरम सीमा रेप टील डेथ तक पहुंच गया है।

अत: हम सभी धर्माचारियों से मार्मिक अपील करते है कि मनुष्य को मनुष्य ही रहने दीजिए उसे भगवान मत बनाइये और समाज को ढोंग आडम्बर, पाखण्ड और अंधविश्वास में मत ढकेलिये। आप सब नैतिक शिक्षा ओर चरित्र निर्माण के कार्य को अपने हाथ में लेकर देश को सबल बनावे।

---

thearyasamaj.org

अंधविश्वास-निर्मूलन

लेखक- मदन रहेजा

-पिछले अंक का शेष...

अंधविश्वास 18 : कहते हैं कि साधु संत या गुरू का निन्दा नहीं करनी चाहिये, इससे पाप लगता है।

निर्मूलन : किसी की भी निन्दा नहीं करनी चाहिए- यह सच है, परन्तु सत्य कहने में कभी डरना नहीं चाहिए। जो वस्तु जैसी है उसे वैसा ही कहना-जानना-मानना स्तुति कहाता हैं। जो व्यक्ति जैसा है और उसके बारे में जैसा जानते हैं तो वैसा कहने में क्या आपत्ति है? यह उस व्यक्ति को निन्दा नहीं है। किसी के बारे में गलत कहना- उसकी बिना कारण बुराई करना-पीठ-पीछे किसी के बारे में ऐसा कहना जो हम नहीं जानते-इसको निम्न कह सकते हैं।

कोई चोर है, चोरी करता है और उसके बारे में कहें कि इस अमुक व्यक्ति से बच के रहना चाहिए- तो क्या यह निन्दा होती है? जी नहीं! जो संत-महात्मा हैं, अगर उनके बारे में गलत बात करें तो यह निन्दा है; परन्तु अगर उनके बारे में सही-सही बात रहे हैं तो यह निन्दा नहीं अपितु उनकी स्तुति है। किसी की भी निन्दा करना पाप है- यह हम भी मानते हैं, जानते हैं। सत्य बोलने में कोई पाप नहीं। हाँ असत्य बोलने में या असत्य बात को छुपाने में अवश्य पाप लगता है।

जो साधु-संत-महात्मा-गुरु वेद- विरुद्ध बात करते हैं, वास्तव में वे साधु-संत- महात्मा या गुरु तो हो ही नहीं सकते। इन लोगों का पोल खोलने में ही परोपकार है। जो कभी कुछ कहते हैं और कभी कुछ ऐसे लोग महात्मा या गुरु कहाने के योग्य नहीं होते। ये माना कि मनुष्य गलतियां करता है- गलतियों का पुतला है, परन्तु उनको भी चाहिए कि जो भी वक्तव्य दें- प्रवचन दें, उनमें भेदन नहीं होना चाहिए। कभी सत्य बोलें- कभी असत्य बोलें- तो ऐसे व्यक्तियों की गलती को कहना-निन्दा नहीं होती। गुरु हो या महागुरु, अगर गलती करता है तो उसको सही करना ही सबका धर्म है।

बिना वजह किसी की बुराई करना पाप है।

हमने गुरुओं (आजकल के बाजारू दुकानदारी करनेवाले, अपने-आप को गुरु कहलानेवाले) की जो भी बात की है वह देखी-सुनी हुई बातें हैं। हमने उनके अनेक प्रवचन सुने हैं- कभी वेदों की बातें करते हैं, कभी वेदों का खंडन करते हैं तो ऐसे गुरुओं को क्या कहना चाहिए? जो केवल अपने शिष्य (चेले) बनाने में ही लगे हैं- केवल भीड़ इकट्ठी करने में ही अपनी शान-मान-सम्मान समझे हैं-

thearyasamaj.org

कभी रुलाते हैं कभी हँसाते हैं- ये तमाशाई गुरु नहीं तो और क्या हैं? क्या गुरु नहीं कहता- मेरा नामदान ग्रहण करो तो ही तुम्हारा कल्याण होगा? क्या ऐसे लोगों को आप गुरु मानते हैं? जो समाज के कल्याण के लिए कुछ नहीं करते, केवल उनका अपना कल्याण कैसे हो इसी में लगे रहते हैं- क्या उनको गुरु का दर्जा देना चाहिए?

जो सच्चे गुरु हैं उनकी नतमस्तक होकर वंदना करते हैं। उनकी बात को मानना ही शिष्यों का परमधर्म हैं। जो सच्चे गुरु हैं उनका हम भी सेवा-सत्कार करते हैं। जो हमारा सत्य मार्गदर्शन करते हैं ऐसे गुरुओं की निन्दा कैसे हो सकती है? सच्चे गुरु तो स्वयं भी ऐसा कहते हैं कि जो कुछ सत्य है- वैदिक सिद्धान्तों के अनुकूल है उसी को जानना-मानना चाहिए। गुरु मनुष्य ही होता है। वह ईश्वर तो कभी बन ही नहीं सकता और उस सच्चे गुरु को ईश्वर का दर्जा देना भी पाप है।

सच्चे गुरु की अवश्य ही पूजा होनी चाहिए इसमें कोई दो राय नहीं है।

अंधविश्वास : 19 : मनुष्य डरपोक प्राणी है। निर्भयता का उपाय है तंत्र-मंत्र और यंत्र शक्ति का सहारा लेना।

निर्मूलन : डर लगने के अनेक कारण हो सकते हैं, परन्तु मुख्य कारण है 'अज्ञानता'। जब तक मन में डर बैठा हुआ है, वह चैन की साँस नहीं ले सकता। भीरुता मनुष्य को पतन की ओर ले जाती है और निडर ही उन्नति के पथ पर चल सकता है।

डर के कारण ही मनुष्य में हीनता उत्पन्न होती है, फलस्वरूप वह अपने जीवन में हमेशा दुःखी रहता है। ईश्वर ने मनुष्य को बुद्धि प्रदान की है- विवेक दिया है, परन्तु उसका प्रयोग अधिकतर लोग नहीं करते। डरते हैं कि बुद्धि के इस्तेमाल से शायद बुद्धि खत्म न हो जाए। इसी गलतफहमी में उनकी बुद्धि पर जंग लग जाती है और बुद्धि के प्रयोग न करने से बुद्धि क्षीण हो जाती है।

यह प्राकृतिक नियम है और सैद्धान्तिक) भी है कि जो वस्तु हम जमा करते हैं वह सदा घटती है, और जिस वस्तु को बाँटते हैं वही वस्तु बढ़ती रहती है। गुलाबी फूल सूर्य की किरणों में से केवल गुलाबी रंग ही वापस लौटा देता है, परिणामतः उसमें गुलाबी रंग ही रहता है। सफेद रंग अपने पास कुछ नहीं रखता, सब रंग लौटा देता है, इसी के परिणाम से वह सफेदी को बरकरार रखता है। कोयला सूर्य की किरणें वापस ही नहीं करता, तभी तो वह काला रहता है। विद्वान् लोग अपना ज्ञान औरों को बाँटते रहते हैं। परिणामतः वे अधिक विद्वान् हो जाते हैं। स्कूल-मास्टर रोज पढ़ाते हैं, अतः उनको अपना विषय याद रह जाता है। संगीतकार जितना संगीत रचता और बाँटता है, उतना ही वह सुलझा हुआ संगीतकार कहाता है। कोई भी वस्तु जितनी बाँटी जाती है- यह विधि का विधान है कि वही वस्तु उसके पास अधिक रहती है। दान देनेवाला कभी

thearyasamaj.org

निर्धन नहीं होता। विद्यादान देनेवाला कभी मूर्ख नहीं होता- सदा निर्भय होता है। जो दूसरों की रक्षा करता है, सभी उसकी रक्षा करने में तत्पर रहते हैं। निर्भयता मिलती है प्रभु-स्मरण से! निर्भयता प्राप्त होती है निष्काम कर्मों से! निर्भयता मिलती है सब प्राणियों के प्रति प्रेम करने से। निर्भयता प्राप्त होती है बुरे और अशुभ कर्मों से बचने से! सबसे मित्रता करने से।

प्रभु-भक्ति से मनुष्य में जो सबसे पहला सद्‌गुण प्राप्त होता है वह है 'निडरता'। निर्भय मनुष्य ही परमपिता परमात्मा की गोद में बैठने का अधिकारी होता है। प्रभु की अमृतमयी गोद में बैठकर डर किसका? कुछ लोगों का काम ही डराना-धमकाना है, इसी को गुंडागर्दी कहते हैं। धर्म के नाम पर डराना तो गुडागर्दी से भी अधिक भयंकर पाप है। धर्म की आड़ में मंत्र-तंत्र-यंत्र का पाखण्ड करना और सीधे-सादे लोगों को भ्रमित करना तथा अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए काली विद्या से डराना धूर्त लोगों का काम है। कुछ लोग अपने-आपको तांत्रिक समझते हैं और कहते हैं कि 'हमारे पास आओ तो हम आपका कल्याण करेंगे; किसी का अशुभ करना है तो हमारे द्वारा हो सकता है- हम तांत्रिक विद्या से जो चाहें कर सकते हैं- किसी का कल्याण या किसी की तबाही भी कर सकते हैं- यहाँ तक कि किसी की मृत्यु भी करा सकते हैं। हमारी काली विद्या का सहारा लेना है तो किसी से इस बात का जिक्र भी न करना, वरना तुम्हारा सर्वनाश हो जाएगा।' ऐसे धूर्तों से बचो। निडर होकर जियो।

अंधविश्वास : 20 : मंत्र, यन्त्र और तंत्र में अनेक प्रकार की शक्तियाँ होती हैं। उनसे हर प्रकार के कार्य सिद्ध होते हैं।

निर्मूलन : मंत्र क्या है और उसकी शक्ति क्या है- यह एक और भ्रान्ति है जो सबकी समझ में अच्छी तरह नहीं आती, क्योंकि उन्होंने मंत्र का सही स्वरूप समझा ही नहीं है।

मंत्र कहते हैं- मंत्रणा को। जिस पर कुछ विचार किया जा सके, उस विषय को मंत्र कहते हैं। याद रहे कि मंत्र ईश्वरीय ही होते हैं अर्थात् वेद की ऋचाओं को ही मंत्र की उपाधि दी जाती है। किसी ऋषि-मुनि-साधु के बनाए वाक्यों को 'श्लोक' एवं 'दोहा' कहते हैं। गीता में श्लोक हैं- उपनिषदों में सूक्त हैं- दर्शनग्रंथों में सूत्र होते हैं, परन्तु मंत्र केवल और केवल वेद की ऋचाओं को ही कहते हैं। वेद के हर एक मंत्र पर विचार किया जा सकता है तथा उन विचारों से मनुष्य-जीवन में प्रगति और उत्थान हो सकता है।

जब वेद में कहे मंत्र पर आचरण किया जाता है, तभी मंत्र की शक्ति अपना काम करती है। मंत्र को समझकर उसका आचरण करना ही सही मायनों में मंत्र-पाठ कहाता है। मंत्रोच्चारण से मंत्र कंठस्थ हो सकता है परन्तु मंत्र-शक्ति तभी प्राप्त होती है जबकि उस मंत्र के भाव पर आचरण करते हैं।

thearyasamaj.org

जब किसी मंत्र के भाव को लेकर किसी वस्तु का निर्माण किया जाता है, उस वस्तु को (उपकरण को) यंत्र कहते हैं। वही यंत्र जब किसी काम के लिए उपयोग में लाया जाता है तो उसे तंत्र की संज्ञा दी जाती है। मंत्र लिखकर तावीज बनाकर किसी के गले में बाँध देना-लोग इसको भी तंत्र कहते हैं।

मंत्र+यंत्र+तंत्र। प्रायः लोग तंत्र-विद्या से किसी का अशुभ करने करवाने का प्रयत्न करते हैं, जो उचित नहीं है। जो दूसरों का अशुभ करता है, प्रकृति-नियमानुसार उसका ही अशुभ होता है। भला करनेवाले ही होता है- आजमाकर देख लीजिये! हाथ कंगन को आरसी क्या, और पढ़े-लिखे को फारसी क्या? जो जैसा करता है उसको वैसा ही फल मिलता है, अतः ईश्वर की न्यायव्यवस्था से सावधान रहो! कर्म करने से पहले सोचो-विचारो, फिर उस कार्य को करो!

अज्ञानता का दूसरा नाम 'डर' है- नास्तिक है। जब ईश्वर साथ में है तो डर किस बात का?

दुष्ट आदमी से कैसे व्यवहार करें? दुष्ट से कभी-कभी दुष्टता का व्यवहार भी करना पड़ता है। तभी तो कहते हैं- शठे शाठ्यं समाचरेत्। यदि दुष्टता से स्वयं को बचाना है तो दुष्ट से मेलजोल ही न बढ़ाएँ। जब कभी आमना-सामना हो जाए तो प्रेम और समझदारी से काम लें। प्रेम से बात करेंगे और विवेक को जागृत कर व्यवहार करेंगे तो शत्रु भी कोई हानि नहीं पहुँचा सकता। विद्वानों से मित्रता करें और जो अनाड़ी हैं उनसे वैर-विरोध न करके प्रेम और समझदारी से बुद्धिपूर्वक व्यवहार करें। इसी में समझदारी है। जीओं और जीने दो-यही मूलमंत्र है जो सभी के लिए हितकर है।

वेदाध्ययन करें- स्वाध्याय में नागा न करें- आर्षग्रन्थों का नियम से स्वाध्याय करें- अपने व्यवहार में परिवर्तन लाएँ। काम-क्रोध-लोभ-मोह-ईर्ष्या-द्वेष-अहंकार ही हमारे असली शत्रु हैं, इनको त्यागें और प्रेम को अपने जीवन में धारण करें। श्रद्धा से ही प्रेम उत्पन्न होता है-(प्रेम से ईश्वर की प्राप्ति होती है- ईश्वर ही सब प्रकार के सुखों का भण्डार है- अमृत-सागर है। ईश्वर-प्राप्ति में ही परम आनन्द है।

अंधविश्वास : 21 : आत्मा परमात्मा का अंश है, परम आनन्द स्वरूप है।

निर्मूलन : जी नहीं। आत्मा अलग है और परमात्मा अलग है। दोनों ही अलग-अलग सत्ताएँ हैं। इन दोनों का मेल तो होता है, परन्तु आत्मा का परमात्मा में विलय नहीं होता। यह बहुत बड़ी भ्रान्ति है कि आत्मा परमात्मा का ही अंश हैं वस्तुतः आत्मा परमात्मा का अंश हो ही नहीं सकता। हम यहाँ कुछ तर्क देते हैं, बुद्धिजीवी लोग इस पर विचारकर निर्णय स्वयं ही कर सकते हैं। नीचे कुछ प्रश्न करते हैं उनका उत्तर ढूँढने का प्रयत्न करें-

thearyasamaj.org

(1) आत्माएँ अनेक हैं तो ये सभी परमात्मा से कब अलग हुई?

(2) जब से यह दुनिया है- आत्माएँ भी हैं और परमात्मा भी है। देखने में तो यही आता है कि प्रतिदिन जीवों की बढ़ोतरी होती जा रही है। तो क्या ईश्वर अपने को अनेक टुकड़ों (अंशों) में बाँटकर नई आत्माओं का निर्माण कर रहा है?

(3) अगर किसी प्रकार आत्मा परमात्मा से जुदा होती रही तो एक दिन ऐसा भी आएगा जब परमात्मा का अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा। क्या ऐसा सम्भव है?

(4) आखिर परमात्मा में इतना विकार क्यों होता है कि उसके अंश होते रहते हैं?

(5) कहते हैं ईश्वर एक और अखंड है। जब आत्माएँ परमात्मा के अंश हैं तो ईश्वर क्या अनेक टुकड़ों में बट गया है?

(6) हम (आत्माएँ) परमात्मा की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करते हैं आत्माएँ परमात्मा का अंश मानें तो क्या हम अपनी ही पूजा करते हैं? यह तो ढोंग हुआ?

(7) ईश्वर से हम (आत्माएँ) मुक्ति की याचना करते हैं, परन्तु जो स्वयं (ईश्वर) ही छिन्न-भिन्न होता जा रहा है, जो अपनी ही रक्षा-सुरक्षा नहीं कर सकता तो हमारी बात कैसे सुनेगा? जो स्वयं ही परेशान है वह औरों की सोचेगा?

(8) आत्मा और परमात्मा का अंश है तो दोनों में समानता होनी चाहिये- दोनों के गुण-कर्म-स्वभाव एक-से होने चाहिए, परन्तु ऐसा नहीं है? क्यों?

(9) कर्मफल ईश्वर देता है- इसका तो यही अर्थ हुआ कि वह अपने-आपको दण्ड देता है, अर्थात् ईश्वर होकर भी (आत्मा अगर परमात्मा का अंश है तो) शुभाशुभ कर्म क्यों करता है और फल भी स्वयं ही क्यों भुगतता है?

(10) जब आत्मा परमात्मा का ही अंश है तो वह परमात्मा अपने ही भाग (अंश) बनाकर किसको दिखाता है? उसका ऐसा करने में क्या प्रयोजन है? ऐसी लीला किसके लिए रचाता है?

(11) परमात्मा प्रकृति में विकृति उत्पन्न कर सृष्टि की रचना क्यों करता है? किसके लिए करता है?

(12) स्वर्ग और नरक, पाप और पुण्य किसके लिए हैं?

(13) वेद का ज्ञान किसके लिए है?

(14) ईश्वर सर्वज्ञ है तो अपने ही अंश बनाकर अल्पज्ञ क्यों बनता है? यह तो अल्पज्ञ ही कर सकता है, है ना?

(15) अपने ही कर्मफल के बदले में इतनी सारी योनियों में भटकना क्या किसी सर्वज्ञ का काम हो सकता है?

(16) साधारण मनुष्यों का ऐसी बातें सोच-सोचकर ही मस्तिष्क घूम जाता है, अर्थात् ईश्वर का मस्तिष्क भी घूमता है?

(17) स्त्री-पुरूष के संयोग से संतान उत्पन्न

thearyasamaj.org

होती है। अगर आत्मा परमात्मा का अंश है तो क्या संयोग-वियोग ईश्वर स्वयं से ही करता है?

(18) प्रलयावस्था में क्या आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है? अगर हाँ तो कर्मफल का क्या हुआ? अगर नहीं तो ईश्वर सदा से खंडित है और ऐसा ही रहेगा?

(19) भूकम्प-बाढ़ इत्यादि आधिवैदिक दुःख में अनेक शरीर नष्ट हो जाते हैं- कितनी ही आत्माओं को इनका सामना करना पड़ता है- क्या ईश्वर अपनी ही बनाई सृष्टि से अपने-आपको दुःख देता है?

(20) अगर आत्मा परमात्मा का अंश है तो इतने सारे मंदिर-मस्जिदों की क्या आवश्यकता है? इतने मत-मजहब - जातियाँ- इतने झगड़े-फसाद इतने देश- इतनी अज्ञानता किसी की है? क्या ईश्वर इतना अज्ञानी हो गया है? ऐसा है तो वह इतने बड़े ब्रह्माण्ड को कैसे सँभालता होगा? सज्जनों और द्विज्जनों! ऐसा कुछ भी नहीं है। आत्मा न तो परमात्मा का अंश है और न ही जीवात्मा कभी परमात्मा के अंश हो सकता हैं। ईश्वर एक है, अखंड है और सदा एकरस रहता है- वह सर्वज्ञ है।

परमपिता परमात्मा को संक्षेप में समझने का प्रयास करें। अपने गुणों के अनुसार ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप-निराकार- अनादि- अनुपम- सर्वशक्तिमान्- न्यायकारी- दयालु- अजन्मा- अनन्त- निर्विकार- सर्वाधार- सर्वान्तर्यामी- सर्वेश्वर-सर्वव्यापक- अजर- अमर- अभय- नित्य-पवित्र और सृष्टिकर्ता है। सब जीवों के कार्यों का फलदाता मनुष्यमात्र के कल्याणार्थ वेदज्ञान का प्रदाता है।

ईश्वर को खंडित जानना-मानना मूर्खता है- आत्मा को परमात्मा का अंश- भाग- हिस्सा-टुकड़ा मान लेना अज्ञानता है- घोर पाप है। आत्मा परमात्मा का अंश नहीं है, इसका अस्तित्व परमात्मा से पृथक है। इस बात को हमेशा याद रखना चाहिए कि तीन तत्व अनादि-अजर-अमर हैं, वे हैं (1) ईश्वर, (2) जीव, और (3) प्रकृति। प्रकृति जड़ है, जबकि ईश्वर और जीव चेतन हैं अर्थात् इनमें ज्ञान है, ईश्वर सर्वज्ञ है, सर्वव्यापक है- निराकार है, और सृष्टिकर्ता है। दूसरी और जीव अल्पज्ञ है- एक देशी अणु है और ईश्वर की कृपा से ही शरीर धारण करता है। ससीम होने के कारण वह सृष्टि निर्माण नहीं कर सकता, भोग और योग की सिद्धि के लिए उसको इस जड़ शरीर की साधन के तौर पर आवश्यकता पड़ती है जो वह अपने ही किये कर्मों के फलस्वरूप सर्वज्ञ परमपिता परमात्मा से प्राप्त करता है, अतः आत्मा भी बिना शरीर के (प्रकृति की भाँति) कुछ नहीं कर सकता ईश्वर, जीव (आत्माएँ) और प्रकृति, इन तीनों के मेल से ही संसार में रौनक बनी रहती हैं ईश्वर प्रकृति-तत्त्व से ही सृष्टि का निर्माण करता है। अगर जीव को ईश्वर का अंश मान भी लें, तो

thearyasamaj.org

फिर जीव को कर्म करने की आवश्यकता ही क्या है? हम (आत्माएँ) कार्य करते हैं- खाते हैं- पीते हैं- सोते हैं- जागते हैं- अनेक अच्छे-बुरे कार्य करते हैं और अच्छे फल की इच्छा करते हैं। अब जरा सोचिये-विचारिये! हम ऐसा क्यों करते हैं? अगर हम स्वयं ही ईश्वर हैं (ईश्वर के अंश हैं तो) तो फिर किसी से भी क्योकर डरते हैं? फिर हमें अच्छे कार्य करने की प्रेरणा कौन देता है? आनन्द कौन बख्शता है? हम मंदिर-मस्जिद इत्यादि भवनों में क्यों जाते हैं? दुःख के समय उस परमशक्ति परमपिता परमेश्वर को क्यों याद करते हैं? इन भ्रान्तियों का निवारण तो यही है कि हम स्वयं अलग सकता हैं और हमारा परमप्रिय परमवंदनीय परमात्मा हम अल्पज्ञों से जुदा है जिसके भण्डार 'आनन्द' रस से भरे हुए हैं। उस परमानन्द को प्राप्त करने के लिए ही हम सभी (आत्माएँ) उस प्रभु से प्रार्थना करते हैं, उसकी उपासना करते हैं। कर्म करके फल उसके ऊपर छोड़ देते हैं। जो फल वह परमात्मा हमको प्रदान करता है, वह भुगतना ही पड़ता है।

त्रैतवाद के सिद्धान्त को जाने-बिना ज्ञान-प्राप्ति कभी नहीं हो सकती। एकवाद-द्वैतवाद के जानने-माननेवाले त्रैतवाद के सिद्धान्त के आगे क्यों झुक जाते हैं? वैदिक मान्यता यही है कि ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनों ही पृथक् तत्त्व हैं जो कभी, किसी भी स्थिति में एक-दूसरे में लीन नही हो सकते। अतः आत्मा को परमात्मा का अंश माननेवाले लोगों को सत्य को जानना और मानना चाहिए।

केवल स्वार्थपूर्ति के लिए, अपनी पूजा करवाने की लालसा में जनसाधारण को अज्ञानता की खाई में नहीं ढकेलना चाहिए। जन-साधारण से भी हम प्रार्थना करते हैं। कि स्वाध्याय करें- आर्षग्रन्थों को घर में रखें, उन्हें स्वयं भी पढ़ें, औरों को भी पढ़ने की प्रेरणा देते रहें। स्वयं आर्य (श्रेष्ठ) बनें और दूसरों को भी आर्य बनावें।

अंधविश्वास 22 : दिवाली के शुभासवर पर लक्ष्मीपूजन करना चाहिए। ऐसा न करेंगे तो लक्ष्मी नाराज होकर- रूठकर घर से चली जाती हैं और दरिद्रता का सामना करना पड़ता है।

निर्मूलन : दिवाली के शुभावसर पर ही नहीं, परन्तु सभी दिन लक्ष्मी की पूजा करनी चाहिए। इसकी पूजा न करने से यह सच है कि लक्ष्मी रूठ जाती है और घर में अनेक प्रकार के कष्ट आते हैं। आगे बढ़ने से पहले हमें अच्छी तरह समझना होगा कि 'लक्ष्मी' किसे कहते हैं और लक्ष्मी की **'पूजा'** का क्या तात्पर्य है एवं लक्ष्मीपूजन कब और कैसे करना चाहिए?

लक्ष्मी उसे कहते हैं जो लक्ष्य तक पहुँचाए। हर एक के जीवन को कोई न कोई लक्ष्य (मंजिल) होता है, परन्तु मनुष्यमात्र का परम लक्ष्य है **परमसुख की प्राप्ति** अर्थात् आनन्द की प्राप्ति। इस लक्ष्य को हासिल करने

thearyasamaj.org

का सरलतम तरीका है- ईश्वर-प्राप्ति!

धन-दौलत लक्ष्मी का ही स्वरूप है क्योंकि जीवन को सुखमय बनाने में इसका बहुत बड़ा हाथ होता है। धन-दौलत से संसार-भर की जड़ वस्तुएँ खरीदी जा सकती है- यह बिल्कुल सच है। अगर संसार में सुखपूर्वक रहना है तो इस लक्ष्मी को भी हमारे पास रहना होगा और अगर उस परलोक में (ईश्वर के पास) रहना है तो हमें ऐसी लक्ष्मी का सहारा लेना होगा जो हमको परमपिता परमात्मा तक पहुँचाने में सहायता करे।

पहले संसारिक लक्ष्मी के बारे में बताते हैं, फिर उस लक्ष्मी के बारे में बताएँगे जो परमप्रिय प्रभु से मिलाती है। संसार की लक्ष्मी 'रुपया-पैसा-धन' है जो वह सफेद भी होती है और काली भी। विद्वज्जन तो जानते ही हैं कि सफेद और काली लक्ष्मी कैसी होती है।

जो धन ईमानदारी से, धर्मपूर्वक, परिश्रम से कमाया जाता है वह 'सफेद धन' होता है- इसी को सफेद लक्ष्मी कहते हैं। यह लक्ष्मी जिसके घर में वास करती है वह घर सौभाग्यशाली होता है। जिस घर में बेईमानी से, अधर्मपूर्वक और बिना परिश्रम किये (जुआ-तस्करी द्वारा) धन आता है उस घर की बरबादी शुरू हो जाती है। पहले तो घर में खुशियों जैसा वातावरण बना रहता है, परन्तु कुछ ही समय के पश्चात् वही खुशी मायूसी में परिवर्तित हो जाती है- दुनिया-भर के दुःखों का पहाड़ टूट पड़ता है और छुटकारा पाना बहुत ही कठिन हो जाता है।

धर्म से कमाया धन हमेशा साथ देता है और अधर्म से इकट्ठा किया हुआ धन घर की तबाही करता है। जो धर्म से कमाया हुआ धन होता है उसका व्यय भी धर्मपूर्वक ही होता है- यही लक्ष्मी की सही पूजा है अर्थात् धन का सदुपयोग करना ही लक्ष्मी की पूजा कहाती हैं जो धन बिना परिश्रम किये घर में आया है- उल्टे-सीधे कार्य करके आया है- कुकर्म करके 'काले धन' की प्राप्ति हुई है- सच मानो ऐसा काला धन काले कार्यों में ही व्यय होता है **यह लक्ष्मी का निरादर है।**

जब कहीं खर्च करना उचित है- आवश्यक है, अर्थात् जब धन का सदुपयोग होता है तो वह लक्ष्मीपूजन है, और जब धन का दुरुपयोग होता है, वह लक्ष्मी का निरादन है।

दिवाली के शुभ अवसर पर लक्ष्मीपूजन करना चाहिए। तात्पर्य आप समझ ही गए होंगे, अर्थात् परिश्रम से कमाई हुई लक्ष्मी का ठीक-ठाक उपयोग करें- नेक कार्य में लगाएँ- धर्मकार्यों में लगाएँ- गरीबों को दान दें, इत्यादी यही लक्ष्मी पूजन है, अक्सर लोग दूकानों में दफ्तरों में चाँदी के सिक्के दूध में डुबाकर लक्ष्मी की पूजा करते हैं, भजन गाते हैं और लक्ष्मी (धन) को घर में ही बसे रहने की याचना करते हैं यहाँ इस बात को स्पष्ट करना आवश्यक है कि जो धन पुण्यकार्यों में खर्च होता है- वह खर्च नहीं होता, अपितु आपके पुण्यकर्मों में खर्च होता

thearyasamaj.org

है- वह खर्च नहीं होता, अपितु आपके पुण्यकर्मा में जमा होता रहता है। इन्हीं शुभ कार्यों से परमपिता परमात्मा धन की वृष्टि उस घर में करता है। जिन घरों में धर्म-कार्य नहीं होते-गलत कार्य होते रहते हैं- लक्ष्मी (धन) वहाँ से प्रस्थान करती है, अर्थात् धन का दुरूपयोग होने से धन की समाप्ति हो जाती है' घर में दीनता का वातावरण उत्पन्न हो जाता है।

भौतिक लक्ष्मी जड़ है। उसे अगरबत्ती-धूप का धुआँ दिखाने से या दीये की ज्योत दिखाने से उसमें कोई फर्क नहीं आता। इन चाँदी के सिक्कों के स्थान पर कोई नोट नहीं रखता- क्यों? डर है कि नोट जलकर राख हो जाने को संभावना हैं इससे भी यह प्रमाणित होता है कि यह लक्ष्मीपूजन केवल दिखावा है, वास्तविकता नहीं।

दिवाली के शुभावअसर पर सच्ची लक्ष्मी की पूजा करनी चाहिए। घर में जो भी अपने से बड़े बुजुर्ग लोग हैं उनके पैर छूकर, आगे झुककर आशीर्वाद लेना चाहिए। मातृ-शक्ति का मान- सम्मान-सत्कार करना चाहिए। गृहलक्ष्मी अर्थात् धर्मपत्नी को सदा प्रसन्न रखने का प्रयास करना चाहिए। गृहलक्ष्मी नाराज है, रूठी हुई है तो उसे मनाना चाहिए। गृहलक्ष्मी प्रसन्नचित नहीं है तो लक्ष्मी (धन) का घर में प्रवेश बन्द हो जाता है। जिस घर में कलह-क्लेश और जहाँ प्रेम के वातावरण की न्यूनतम होती है, उस घर से लक्ष्मी सचमुच रूठ जाती है। स्त्री-पुरूष का प्रेम ही घर में सुख-शान्ति को बढ़ावा देता है, अतः गृहस्थी लोगों को सदा प्रसन्नचित रहना चाहिए।

धन-दौलत तो आनी-जानी वस्तु है। उसे अधिक प्राथमिकता न देकर अपने परमलक्ष्य की और अधिक ध्यान देना चाहिए। धन को साधन समझें, साध्य न बनाएँ। गृहस्थ हो या अकेला व्यक्ति, सबका सुख-समृद्धि बरकरार रहे, उतना ही धन गृहस्थी के लिए आवश्यक है। 'खूब कमाओं और खूब दान करो।' परन्तु आवश्यकता से अधिक धन को परोपकारी कार्य में लगाने से घर में सुख-सम्पत्ति-शान्ति का वातावरण बना रहता है। दानपुण्य-कर्मों से घर में समृद्धि और प्रेम बना रहता है। फिजूल खर्ची से ही घर अशान्ति और अन्य प्रकार के अनेक नाखुश वातावरण उत्पन्न होते हैं।

ज्यों जल बाढ़े नाव में, घर में बाढ़े दाम।
दोनों हाथ उलीचिये, यहि सज्जन को काम।।

मनुष्य की असली लक्ष्मी 'ज्ञान' है जिसकी प्राप्ति सबको करनी चाहिये। ज्ञान ही सच्ची लक्ष्मी है जो परमपिता परमात्मा से मिलाप कराती है। सद्ज्ञान की प्राप्ति के लिए हमें परिश्रम, वैराग्य, सबसे प्रेम और आर्ष गंथों के स्वाध्याय की आवश्यकता है। इस लक्ष्मी से ही नारायण के दर्शन होते हैं और जन्म-जन्मान्तरों के सब प्रकार के कष्ट क्षीण हो जाते हैं। लक्ष्मी-नारायण की प्राप्ति ही हम सबका परमलक्ष्य है।

शेष अगले अंक में

thearyasamaj.org

अग्नि सुरक्षा से आत्मविश्वास

पिछले अंक का शेष...

- देव शर्मा वेदालंकार, नई दिल्ली

अग्नि की स्थापना करके उसको बढ़ाने का प्रयास करता हुआ यजमान कहता है कि हे अग्नि देव! तू जाग और यजमान के अन्तःकरण को जगा उसे शिव संकल्पों से ओत-प्रोत कर दे। अग्नि को जलाने वाला और इससे ऊर्जा प्राप्त करने वाला भासमान (चमकता हुआ) व्यक्ति कह उठता है कि हे अग्ने! इस पृथ्वी को देवयंजनि अर्थात् देवयज्ञ करने की भूमि और हमें देवता बनने में हमारी सहायता कर।

प्रश्न : अग्नि की स्थापना कर दी जाए और वह जागे नहीं तो जिस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अग्नि की स्थापना हुई थी, उसका क्या होगा?

उत्तर : इसी रहस्य को समझने के लिए अति उपयुक्त मन्त्र को विस्तृत वैज्ञानिक चिन्तन के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है। पूर्व मन्त्र **'भूर्भुवः स्वःद्यौरिव'** से अग्नि की स्थापना हो चुकी है। अब उसके प्रकाशित होने की बात की जा रही है। अग्नि जाग जाए और बुझने न पाये यजमान की जिम्मेवारी है। अर्थात् उस अग्नि को भी जगाते रहना होगा। लापरवाही से बात नहीं बनेगी। लगातार प्रयास करना होगा। तभी तो अग्नि अपना काम कर पायेगी और यजमान को लाभ दे पाएगी।

प्रश्न : अग्नि प्रकाशित कैसे होगी?

उत्तर : पूर्व मन्त्र में **'अग्नियादधे'** अग्नि स्थापना करता हूँ ऐसा यजमान ने संकल्प किया था। यहाँ इस मन्त्र में **उद्‌बुध्यस्व** प्रकाशित होने की बात की गई है। **अग्नि हो और प्रकाशित न हो तो उसका उपयोग कैसे होगा?** इसलिए अग्नि को प्रकाशित कराने का प्रयास करना होगा। यही यजमान की बुद्धिमानी, सजगता, कर्मठता होगी। अग्नि प्रकाशित रहे इसके लिए सतत जागरूक व सावधान रहना होगा, इसलिए उसको भोजन देना पड़ेगा। उसका भोजन अन्न है। जिसको खाकर ही उसके अन्दर ऊर्जा आती है और उसको उपयोगी बनाती है। यह ऊर्जा ही यजमान की अग्नि को जगाए रखती है और उसे उसको कर्त्तव्य बोध कराती रहती है।

प्रश्न : बाहर की अग्नि को देखकर तो आप स्पष्ट बता देंगे कि अग्नि जल रही है, परन्तु यजमान की अग्नि को कैसे जाँचेंगे?

उत्तर : उसके काम से जाँचेंगे। यजमान के दो प्रमुख कार्य हैं- एक काम अपने लिए और दूसरा समाज के लिए। शास्त्र की भाषा में इसे इष्ट कहते हैं। जैसे- मन्त्रों से यज्ञ करें, विद्यादान

thearyasamaj.org

करे, सत्य का आचरण करे, तपस्या करे तथा वेद की रक्षा करे आदि। ये सभी कार्य करने पर पहला लाभ उसको मिलेगा फिर दूसरों को मिलेगा। इदन्नको इष्ट कहा गया है क्योंकि इन कामों से आपकी इच्छा की पूर्ति हो रही है। इसलिए इन सभी को विस्तार से जानने की आवश्यकता है।

प्रश्न : ये सब तो बड़े सरल से लगते हैं फिर विस्तार से जानने का क्या अभिप्राय है?

उत्तर : यह बात तो सही है कि देखने में बड़े सरल लगते हैं परन्तु समझने व समझाने में बहुत कठिन है। इसलिए व्यक्ति जीवन भर अधूरे काम करता है और समझता है कि उसने बहुत कुछ कर डाला एक ओर तो काम अधूरा किया दूसरी ओर अहंकारी हो गया। इसलिए एक-एक विषय को विस्तार से जानने की आवश्यक्ता है।

मन्त्रों से यज्ञ करें- अग्नि यजमान को वेद मन्त्रों से यज्ञ करने के लिए प्रेरित करें।

प्रश्न : यहाँ तो श्लोकों, चौपाइयों व दोहों से भी यज्ञ कर लेते हैं। फिर वेद मन्त्रों से ही क्यों?

उत्तर : अग्नि का नाम ही सब से पहले वेद मन्त्र से पता चला। ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र में कहा गया है- **''अग्निमीडे'** अग्नि की स्तुति करता हूँ। जो अग्नि जलाएगा और अग्नि को खिलाएगा तो मन्त्र भी बोलने पड़ेंगे, मन्त्र नहीं तो यज्ञ नहीं। क्योंकि मन्त्र ही तो बताएंगे कि अग्नि को क्या खिलाना है, कैसे उसे उपयोगी बनाना है? कहीं आपने अग्नि को ऐसा वैसा खिला दिया तो यह पृथ्वी 'देंवयजनि' कैसे बनेगी? और मनुष्य देवता कैसे बनेंगे। मन्त्र जो कहता है मैं वैसा ही करू? विरुद्ध आचरण न करूं। **क्योंकि मन्त्रों में गहन जीवनोपयोगी चिन्तन छिपा हुआ है।** भगवान् श्रीकृष्ण ने भी मन्त्र हीन यज्ञ को तामस यज्ञ कहा है।

प्रश्न : अग्नि से हवन (यज्ञ) तो अवश्य हो सकता है और अन्य काम भी हो सकते हैं। परन्तु ईश्वरोपासना कैसे सम्भव है?

उत्तर : इससे पूर्व मन्त्र मे हम यह जान चुके हैं कि मनुष्य वही करे जो भौतिक अग्नि व परमात्मा रूपी अग्नि करती है। **ऊपर उठे, नेतृत्व करे, पवित्र बने और पवित्र बनाए, जितना ले उससे अधिक देने की भावना रखे तो वह उपासक बन जाएगा।** सामान्य मनुष्य और उपासक के कार्यों में अन्तर आ जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण भी यजमान थे। अग्नि के उपासक थे, उन्होंने हमेशा अग्नि को जलाए रखा और अपनी आत्मा को भी इसी अग्नि के गुणों से ओत-प्रोत कर लिया। अग्नि के कार्यों में और उनके कार्यों में समानता आ गयी। वे हमेशा ऊपर उठे, नेतृत्व किया, पवित्र रहे, पवित्रता को कायम रखा, सम्पूर्ण जीवन देते ही

thearyasamaj.org

रहे। उनके ये गुण ही उनको उपासक बना देते हैं। महर्षि दयानन्द की दृष्टि में 'योगेश्वर' बन जाते हैं।

महर्षि दयानन्द भी एक उपासक थे। इसलिए वे उपासक के विषय में लिखते हैं- विशेष भक्ति किया करें, योगाभ्यास और अति प्रेम करे, सकल उत्तम सामग्री लगा कर रखे, सब सामर्थ्य से करे, आत्मा व अन्त:करण से करे। योग के आचार्य भी इस प्रकार वर्णन करते हैं- योग से चित्तवृत्तियों का निरोध होगा। मन शिप्त, मूढ़, विक्षिप्त अवस्थाओं में खाली होगा। एकाग्र अवस्था तक पहुँच जायेंगे। इस प्रकार आत्मा और अन्त:करण पवित्र होगा। फिर आत्मा से निकलने वाली आवाज पवित्र होगी। अंहकार से, लोभ से, काम से, क्रोध से प्रेरित नहीं होगी। आत्मा का हनन करने वाली वृतियाँ, असुर बनाने वाली वृत्तियाँ समाप्त होकर दिव्य लोक में ले जाने वाले और देवता बनाने वाले मार्ग खुल जाएंगे। तभी आप अपनी सकल उत्तम सामग्री उसकी मानने लगेंगे और उसका दुरुपयोग न करके सदुपयोग ही रकेंगे। आपकी शक्ति भी उसके दिखाए मार्ग पर चलने, लगेगी और आप उपासक बन जाएंगे।

विद्वानों का संग और सत्कार - अग्नि यजमान को विद्वानो का संग और सत्कार की प्रेरणा प्रदान करती है। **आगे बढ़ना, पवित्र करना, जितना लेना उससे अधिक देना** इस विद्या की समझ विद्वानों के संग से ही आएगी और तभी यजमान विद्वान् का सत्कार करेगा। आपका **आचार्य अपनी विद्या तपस्या, खोज व चिन्तन के बल पर आपका मार्गदर्शन करेगा।** जब आप विद्वान् से कोई विशेष यज्ञ आदि कर्म सम्पन्न कराते हैं ऋत्विग् वरण अर्थात् आचार्य का चुनाव करते हैं। यह कार्य तो आपकी सत्कार करने की भावना की जानकारी देता है। महर्षि दानन्द ने संस्कारविविध पृष्ठ-25 में विद्वानों के सत्कार की विधि लिखी है। **आचार्य के वरण के लिए कुण्डल, अंगूठी और वस्त्र, आचार्य पत्नी के वस्त्र प्रदान करें।**

प्रश्न : क्या विद्वानों व आचार्यो का सत्कार कुण्डल, अंगूठी व वस्त्र आदि से ही होगा?

उत्तर : यह बहुत महत्वपूर्ण विषय है। इस पर विचार भी गम्भीरता से करना चाहिए क्योंकि आचार्य का सीधा सम्बन्ध यजमान के परिवार से होता है। इसलिए पहले आचार्य के विषय में समझ लें **'अच्छे विद्वान् धार्मिक, जितेन्द्रिय कर्म करने में कुशल, निर्लोभी, परोपकारी, दुर्व्यसनों से रहित, कुलीन, सुशील, वैदिक मतवाले वेदवित् आचार्य होने चाहिए।'** वेद के अनुसार व्यक्ति को दीन-हीन नहीं होना चाहिए। जिस आचार्य का आय का स्रोत ही

thearyasamaj.org

वरण, दक्षिणा व दान हो तो यह इतना अवश्य हो जितने से एक सम्मानित जीवन जिया जा सके तथा उसके लेखन का, चिन्तन, मनन का अनुसन्धान का कार्य सुचारू रूप से चलता रहे।

यज्ञ में ऋत्विजों को श्रीयुक्त व शोभायुक्त होकर ही बैठना चाहिए। बाह्य रूप से वस्त्र एवं आभूषण ही व्यक्ति की शोभा है। तैत्तिरीय संहिता में लिखा है- स्वंर्ण धातु स्वयं शुद्ध एवं पवित्र है और जो इसको धारण करता है उसे वह भी धारण करता है सामान्य रूप से देखा जा सकता है। महान् विद्वान् भी दीन-हीन स्थिति में अपना प्रभाव नही छोड़ पाता है और न ही यजमान की श्रद्धा व सत्कार की भीवना जग पाती है विद्या उसकी आन्तरिक शोभा है। विद्या से सुसम्पन्न और वस्त्र व आभूषण से सुसज्जित आचार्य यजमानों के बीच अपना प्रभाव छोड़ पाता है। और पूजित भी होता है। आज विद्वानों के पास तीन काम शेष बचे है- एक दीन-हीन बनकर अपनी आजीविका चला रहे हैं। दूसरे येनकेन प्रकारेण यजमान के धन का आहरण कर अपना काम चला रहे हैं या नौकरी व व्यापार कार्य में संलग्न हो गए हैं। तीसरे कुछ गिने-चुने गौरवपूर्ण जीवन जी रहे हैं। अधिकतर ब्राह्मण विद्वान् और उनकी सन्तान नौकरी-व्यापार में लगकर जीवन तो साधन सम्पन्न जी रहे हैं परन्तु तपस्या व अनुसन्धान से च्युत हो रहे हैं।

प्रश्न : विद्वान् किस लिए?

उत्तर : जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि विद्वानों की संगति से यजमान इष्ट और आपूर्त कर्मों को करने की प्रेरणा प्राप्त करता है। यदि यजमान इष्ट की प्राप्ति कर लेता है और परिवार की उन्नति का ध्यान नहीं रखता तो उसे अभी इष्ट की प्राप्ति नहीं हुई है। **यजमान की सब से बड़ी पूंजी उसके बच्चे होते हैं। अच्छी शिक्षा प्राप्त करके नौकरी करते हैं या व्यापार करते हैं परन्तु क्या वे जीवन के रहस्य को समझ पाते हैं? या खाने-पीने और मौज-मस्ती करना ही जीवन का लक्ष्य मानते हैं।** विद्वान को भी अग्नि कहा गया है। विद्वान् और यजमान दोनों मिलकर इस पृथ्वी को देवताओं की भूमि बनाएंगे। **इसलिए महर्षि दयानन्द ने भी विद्वान् के सत्कार को यज्ञ माना है।** विद्वान् अपना मार्ग न छोड़ दे बल्कि अपने कार्य को पुण्य का कार्य और अपने पद को गौरव का पद बनाए रखे। इसलिए यजमान यथाशक्ति विद्वान् का वरण करे। यदि असमर्थ हो तो एक जोड़ा यज्ञोपवित और कुशा की अंगूठी प्रदान कर वरण करें। विद्वान् यजमान के व्यक्तिगत जीवन (इष्ट) और सामाजिक जीवन (आपूर्त्त) की उन्नति की कामना करें।

विद्यादान- यह अग्नि यजमान के अन्दर

thearyasamaj.org

विद्यादान की भावना को जागृत करे। अग्नि का काम यजमान के अन्तःकरण को जगाना है, उसकी संकल्प-अग्नि को दृढ़ करना है अर्थात् उसका संकल्प विद्यादान से ही ओत-प्रोत हो जाए।

प्रश्न : अग्नि का काम गरमी देना, जलाना, पवित्र करना है। यह विद्यादान के लिए प्रेरणा कैसे दे सकती है?

उत्तर : अग्नि का एक महत्त्वपूर्ण काम जितना लेना उससे अधिक देना भी है। जिसको कम लोग ही जानते हैं। अग्नि यजमान को इसी काम के लिए प्रेरित करती है कि यह दान नहीं करता तो उसका यज्ञ भी सफल नहीं होगा। हम सभी ने किसी न किसी से विद्या प्राप्त की है पर हम देना नहीं चाहते हैं। हम नियम को तोड़ते हैं।

प्रश्न : नियम क्या है?

उत्तर : अग्नि का एक महत्त्वपूर्ण काम जितना लेना उससे अधिक देना भी है। जिसको कम लोग ही जानते हैं। अग्नि यजमान को इसी काम के लिए प्रेरित करती है कि यदि यह दान नहीं करता तो उसका यज्ञ भी सफल नहीं होगा। हम सभी ने किसी न किसी से विद्या प्राप्त की है पर हम देना नहीं चाहते हैं। हम नियम को तोड़े हैं।

प्रश्न : दान तो किसी का भी किया जा सकता है, फिर विद्या का दान ही क्यों?

उत्तर : शास्त्रों में विद्या दान को ही विशिष्ट महत्त्व प्रदान किया गया है। कहा गया है- **'सर्वेषां दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते'।** विद्या के अतिरिक्त दान से थोड़ा लाभ होगा परन्तु विद्या के दान से व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन संवर सकता है। इसलिए विद्या को समझाते हुए कहा गया है **'सा विद्या या विमुक्तये'** विद्या **बन्धनों से छुड़ाती है। हम अपने आप से प्रश्न कर सकते हैं कि क्या हमने अपने आपको विद्यादान करने के योग्य बनाया है? आप कुछ बच्चों को गायत्री मन्त्र और उसका अर्थ (हे भगवान्!) हमारी बुद्धियों को अच्छे रास्ते पर ले चलो) याद करा सकते हैं।**

सत्य का आचरण- अग्नि यजमान को सत्य का आचरण करना सिखाए। सत्य उसे कहते हैं जो तीनों कालों में एक जैसा रहे **'त्रिकालाबाधिकतं सत्यम्'** अग्नि हमेशा एक जैसा रहता है। उसका काम नहीं बदलता है जब से सृष्टि उत्पन्न हुई है और जब तक रहेगी उसका काम एक जैसा रहेगा।

प्रश्न : ऐसा सुना जाता है कि अग्नि ने होलिका को तो जला दिया परन्तु भक्त प्रह्लाद को नहीं जलाया।

उत्तर : यह सत्य नहीं है। ऐसा कहना अग्नि के स्वरूप से भिन्न है। क्या भूतकाल में अग्नि अच्छे लोगों को नहीं जलाती थी और वर्तमान में

thearyasamaj.org

जलाने लगी? आज भी परीक्षण करके देख सकते हैं पता चल जाएगा। यह झूठ है। अग्नि का काम जलाना है चाहे भूतकाल हो, वर्तमान हो या भविष्य। इसलिए यजमान अग्नि से यह प्रेरणा ले कि वह मिथ्या आचरण से अपने को बचाए और सत्य आचरण को धारण करे। आत्मा के स्वभाव को हमेशा धारण करे।

तपस्या- अग्नि यजमान के अन्तःकरण में तपस्या करने की भावना को दृढ़ करे। अपने धर्म का पालन करना ही तप है।

प्रश्न : अग्नि का धर्म क्या है?

उत्तर : अग्नि का धर्म जलाना, ऊपर उठाना, पवित्र करना, जितना लेना उससे अधिक देना। अग्नि हमेशा अपने धर्म का पालन करती है। जो यजमान को भी अपने धर्म का पालन करने की प्ररेणा देती है।

प्रश्न : यजमान का धर्म क्या है?

उत्तर : यजमान का धर्म अग्नि को जलाना है अर्थात् उसकी सुरक्षा करना है। आग लगाना और बुझाना नहीं है। भगवान् श्रीकृष्ण कहते है- **अपने धर्म का पालन करते हुए मृत्यु भी आ जाए तो वह भी श्रेयस्कर है।** जितने भी महापुरुष हुए हैं उन्होंने हमेशा अपने धर्म का पालन किया है। अनेक कष्ट, विघ्न, बाधाएं आने पर भी वे अपने कर्त्तव्य रूपी धर्म में स्थित रहे। यही तपस्या है जिसे यजमान को सीखना अत्यन्त आवश्यक है।

वेद की रक्षा- अग्नि यजमान के अन्तःकरण में वेद की रक्षा की प्रति दृढ़ भावना जागृत करें तभी उसका इष्ट होगा।

प्रश्न : अग्नि और वेद की रक्षा में क्या सम्बन्ध है?

उत्तर : जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं कि यज्ञ वेद मन्त्रों से ही सम्भव है अर्थात् यज्ञ में वेद मन्त्र ही बोले जाते हैं? और यह भी बता चुके हैं कि क्यों बोले जाते हैं। दूसरी बात देवयज्ञ के करनेसे वेद की रक्षा होती है। महाभारत में कहा गया है अग्निहोत्र के करने से वेद सफल होते है। वेद की रक्षा यजमान के आचरण पर निर्भर करती हैं क्योंकि अग्नि यजमान को इष्ट और आपूर्त्त के लिए दृढ़ संकल्प का पलन करने की शक्ति देती है।

इतने विस्तृत चिन्तन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि बाह्य अग्नि यजमान के अन्दर की अग्नि को प्रज्वलित कर उसे इष्ट प्राप्ति में सहायक होती है। इष्ट क्या होती है? इसको भलीभाँति जानकर अर्थात् व्यक्तिगत उन्नति करके सामाजिक उन्नति की ओर अग्रसर हो जाना है। जो यजमान की पूर्णता का प्रतीक होगी।

अब आपूर्त्त को जानने का प्रयास करते है अन्न-दान, धन-दान, धर्मशाला,

thearyasamaj.org

कूप-तालाब, बाग-बगीचे, लोकोपकारक स्थानों का निर्माण आपूर्त्त कार्य कहलाते हैं। यह अग्नि यजमान को जहाँ इष्ट प्राप्ति के लिए संदेश देती है वहाँ आपूर्त्त को पूरा करने की प्रेरणा भी देती है। इसे हम एक संवाद भी कह सकते हैं। यह अग्नि के माध्यम से यजमान को पूर्ण रूप से जागरूक करने का कार्यक्रम है। जागरूक व्यक्ति ही समझ सकता है कि उसे क्या मिला। किससे मिला और क्यों मिला? प्राकृतिक चीजों हमें जीवन प्रदान कर रही हैं और हम अपने स्वार्थ के लिए उनका दुरुपयोग कर रहे हैं। क्या कभी हम यह सोच पाते हैं कि इन सभी चीजों का उपयोग हमारी आने वाली पीढ़ी ने करना है? यदि हम ऐसा सोच पाते तो फलों को, सब्जियों को, दूध को कैमिकल मिलाकर अधिक उत्पादन के लालच से उनकी गुणवत्ता को समाप्त नहीं करते। अधिक पाने की इस चाहत में हमने अपनी माँ जैसी पवित्र, पालन-पोषण, करने वाली गंगा को भी अपवित्र कर दिया। यमुना आज भी न जाने कितने प्राणियों को जल देकर जीवन प्रदान कर रही है। हमने उसे भी प्रदूषित कर दिया। अधिक चाहना कोई बुरी बात नहीं है, बुरे हैं वे तरीके जिनको अपनाकर हम अधिक प्राप्त करते हैं। पंचभूतों से प्राप्त अग्नि से हम प्रेरणा ले सकते हैं- अग्नि जितना लेती है उससे अधिक हमें देती है और उसके रूप को बिगाड़ कर नहीं बल्कि सुधार कर देती है।

इसलिए इसकी सुरक्षा अत्यन्त आवश्यक है। यह हमारे पवित्र ऋषियों की देन है जो हमे देवत्व की ओर ले जाती है। बहुत सुन्दर कहा गया है जो अधिक लेकर कम दे उसे **राक्षस** कहते हैं। जो जितना ले उतना ही दे उसे **मनुष्य** कहते हैं औ जो जितना ले उससे अधिक दे उसे **देवता** कहते हैं इससे बढ़कर एक व्यक्ति का उत्थान क्या हो सकता है? यजमान का यह काम उसकी जागरूकता को बताता है कि उसकी अग्नि जल रही है और उसे देवत्व की ओर ले जा रही है। इतना विस्तृत देवयज्ञ का चिन्तन है यहाँ तो हम केवल एक मन्त्र को भी पूरी तरह नहीं समझा सके है। विस्तार भय के कारण संक्षेप में इसको लिख सके हैं।

- शेष अगले अंक में...

जो परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना नहीं करता वह कृतघ्न और महामूर्ख भी होता है क्योंकि जिस परमात्मा ने इस जगत् के सब पदार्थ सुख के लिये दे रखे हैं उसके गुण भूल जाना ईश्वर ही को न मानना कृतघ्नता और मूर्खता है।

[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 7]

thearyasamaj.org

संसद की दीवारों के संदेश

-प्रो० उमाकान्त उपाध्याय

भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने पहली बार संसद में प्रवेश करते समय संसद की सीढ़ियों पर सिर रखकर प्रणाम किया है। इससे संसद की गरिमा बहुत बढ़ गयी है। आशा है कि सांसद महानुभाव इस भावना और गरिमा का सम्मान करेंगे।

संसद भवन की दीवारों और लिफ्टों के गुम्बजों पर लिखे हुये संदेश संसद के सदस्यों, सांसदों से कुछ उम्मीद करते है। संसद के इन संदेशों का चयन करने वाले पूर्व राजनयिकों के प्रति मन में श्रद्धा के भाव जग उठते हैं। आज के बहुसंख्यक सासंदों के पतनशील आचरण, स्वार्थी व्यवहारों पर विचार करने से इन आदर्श संदेशों का महत्व बहुत बढ़ जाता है। संसद भवन के प्रथम द्वार से होकर जब हम केन्द्रीय सभागार के प्रांगण की ओर चलते हैं तो प्रवेश द्वार पर भारतीय संस्कृति का एक उदात्त आदर्श निम्न श्लोक में लिखा हुआ मिलता है- **''अयं निजः परो बेति गणना लघुचेतसाम उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥''** **(पंचतंत्रम्)** इसका अर्थ हुआ कि यह अपना है और यह पराया है ऐसा विचार छोटे चित्त वालों का होता है। जो उदार चरित्रवाले होते है वे तो सारे विश्व को अपना परिवार समझते हैं। आज के भूण्डलीकरण और विश्व के बाजारीकरण और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के विश्व के संसाधनों की लूट के युग में ऐसे आदर्शों का महत्व बढ़ जाता है।

लोकसभा सुविशाल सभागार में लोकसभा के अध्यक्ष के पीठ के पीछे दीवार पर बौद्ध युग की प्रसिद्ध सूक्ति- **''धर्म-प्रवर्तनाय''** लिखा हुआ है इसका अर्थ हुआ कि सांसदों को धर्म चक्र के निर्माण के लिये प्रयत्नशील बने रहना चाहिये। इस सूक्ति को देखते हुये हम संसद के सदस्यों को पंथ निरपेक्ष होने की सलाह तो सोच सकते हैं। इससे यह सुस्पष्ट है कि हमारे संसद का आदर्श धर्म नहीं है, बल्कि सम्प्रदाय निरपेक्ष है। संसार में अनेकों पंथ है- शैव, शाक्त, वैष्णव आदि हिन्दुओं के सम्प्रदाय हैं, शिया, सुन्नी आदि मुसलमानों के सम्प्रदाय है, कैथोलिक, प्रोटेस्टेट आदि ईसाईयों के सम्प्रदाय हैं, जैन, बौद्ध, पारसी, सिक्ख, सभी सम्प्रदायों में ही परिगणित है। इनके प्रति संसद का निरपेक्ष समान भाव होना ही इष्ट है।

धर्म तो मानव समाज को, बल्कि सम्पूर्ण विश्व को धारण पालन करता है

thearyasamaj.org

"धारणाद् धर्म मित्याहुः" कहा गया है। जिस आचरण से सम्पूर्ण विश्व मनुष्य पशु, पक्षी, प्राकृतिक संसाधन सभी का धारण, पोषण हो वह धर्म कहलाता है। मनु महाराज ने कहा है- **धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयम् शौच मिन्द्रिय निग्रहः। धीः विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणं॥** इसी के साथ अहिंसा और जोड़ देने से धर्म के ग्यारह लक्षण हो जाते हैं। राज्यसभा के एक प्रवेश द्वार पर धर्म की व्याख्या लिखी हुयी है। **अहिंसा परमो धर्मः।** राष्ट्रपिता गांधीजी की सभाओं में गाया जाता था- वैष्णव जन तो तेने कहिये जे पीर पराई जाने रे। आज के युग में हमारी संसद में जोर जबर्दस्ती से अपनी बात मनवाने का प्रयास होता है।

संसद की दीवारों पर जहां भी भारत का राजचिन्ह अंकित है वहाँ सर्वत्र लिखा हुआ है- **"सत्यमेव जयते"** इसका भाव हुआ कि सांसदों का कर्त्तव्य है कि वे सत्य की जीत की चेष्टा करें। यह पूरा वाक्य है- **"सत्यमेव जयते नानृतम्"** ऋत् का अर्थ होता है उचित अनृत का अर्थ होता है अनुचित। भाव यह हुआ कि जो सत्य अनृत है, अनुचित है उसकी जीत की चेष्टा नहीं होनी चाहिये। उदाहरण के लिये स्कैण्डल होते हैं। घूस का बाजार सर्वत्र गर्म रहता है चोरी, भ्रष्टाचार होते हैं इसलिये उनकी सत्ता तो है पर वे अनुचित है। सांसदों का कर्तव्य है कि वे अनुचित का समर्थन न करें। आज के युग में हमारी संसद में उचित अनुचित का विचार किये बिना पार्टी और नेताओं के समर्थन में बहुत कुछ होता रहता है। कुछ दिनों पहले राष्ट्रमण्डल के खेलों का स्कैण्डल, 2 जी का मामला, कोलगेट का स्कैण्डल, सभी सत्य की निर्मम हत्या हैं। सत्यमेव जयते का संदेश इस तरह के आचरण को रोकता है।

राज्यसभा के एक प्रवेश द्वार पर लिखा हुआ है- **सत्यम् वद् धर्मचर ।** यह तैतृीय उपनिषद का वचन है। इसका सुस्पष्ट संदेश है कि संसद के सदस्य सत्य बोलें और धर्म का आचरण करें। हम यह देख रहे है कि धर्म के आचरण की अनुशंसा अनेक बार की गयी हैं। राज्यसभा के एक और प्रवेशाद्वार पर लिखा हुआ है- **"एक सत् विप्रा बहुधा वदन्ति** (ऋग्० 1/164/46)। ऋग्वेद में तो यह उक्ति परमेश्वर के सम्बन्ध में है किन्तु यहां संसद में इस उल्लेख का आशय यह समझ में आता है कि देशहित, देश की सुरक्षा, देश का बहुमुखी विकास सभी सदस्यों का सांझा सत्य है और सभी सदस्य मिलजुल कर आपसी समन्वय से इस सत्य पाने का प्रयास करें। एक और प्रवेश द्वार पर भगवत् गीता निम्न वाक्य लिखा हुआ है- -**"स्वे-स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः"** (गीता- 18, 45) संसद का

thearyasamaj.org

प्रत्येक सदस्य अपने-अपने कर्म का, कर्तव्यों का पालन करते हुए संसद के उद्देश्य की पूर्ति कर सकता है। आज हमारे बहुदलीय प्रजातंत्र में राजनीतिक दल स्वदेश के स्वार्थ को भुलाकर दलीय स्वार्थों में उलझ जाते है। कई बार तो सदस्यों के आपसी नोंक-झोक में लड़ाई हो जाती है। संसद के ये वाक्य दलीय स्वार्थों से ऊपर उठकर राष्ट्रीय स्वार्थ की अनुशंसा कर रहे हैं।

संसद की प्रथम लिफ्ट के गुम्बद पर महाभारत का निम्न श्लोक अंकित है-

''न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्। धर्मों न सो यत्र न सत्यमस्ति, सत्यम् न तत् यत् छलमभ्युपैति।।''

अर्थात् वह सभा या संसद, संसद नहीं होती जिसमें वृद्ध, वरिष्ठ ज्ञानवृद्ध, अनुभववृद्ध अर्थात् ज्ञानी और अनुभवी लोग न हों। वेवरिष्ठ वृद्ध जन भी नहीं है जिनके वक्तव्य राष्ट्रधर्म और राष्ट्रहित में न हो, राष्ट्र धर्म भी ऐसा हो जिसमेंसत्य की रक्षा होती हो और सत्य भी ऐसा हो जिसमें छल-कपट भरा न हो। इस संदेश का आशय यह है कि हमारे राष्ट्र धर्म, हमारी राजनीति जितना पारदर्शी, हो, हमारे राष्ट्र धर्म में जितना छल-कपट कम होगा उतना ही हमारे राष्ट्र और हमारी संसद की गरिमा बढ़ेगी। लिफ्ट क्रमांक दो के गुम्बद् पर मनुस्मृति का निम्न श्लोक लिखा हुआ है-

''सभा वा न प्रवेष्टव्या, वक्तव्यम् वा समंज्सम्। अब्रुवन्, विब्रुवन् वापि नरो भवति किल्मिषी।।'' (मनु० 8/13)

यह आदेश सभासदों को उनके आचरण की गरिमा के प्रति सतर्क करता है। इस श्लोक का भावार्थ यह है कि सभासद सभा में प्रवेश न करे, यह तो उनकी इच्छा पर है। (हम यह समझते हैं कि जब कोई संसद का सदस्य बन जाता है तो वह संसद में प्रवेश कर चुका, उसे अनुपस्थित होने का अधिकार नहीं है) सभासद जब संसद के सदस्य बन चुके तो उन्हें राष्ट्रधर्म के अनुकूल ही बोलना चाहिये। जो सदस्य संसद में बोलेगा ही नहीं या झूठ बोलेगा वह पाप करेगा। हम पिछली लोकसभा के राष्ट्रमण्डलीय खेलों, 2 जी के घोटाले और कोलगेट के घोटाले के प्रसंग में देख चुके हैं कि पिछली संसद में कैसे-कैसे छल हुये हैं। लिफ्ट क्रमांक तीन पर लिखा हुआ है-

''दया मैत्री च भूतेषु दानम् च मधुरा च वाक्। न ही दूशम् संवननं त्रिषुलोकेषु विद्यते।।'' महाभारत (विदुर नीति) इसका भाव यह है प्राणी मात्र पशु-पक्षी मनुष्य आदि सबके प्रति दया, प्राणी मात्र से मित्रता, मधुर वचन और दान देने की प्रवृत्ति (केवल धन दान नहीं या भूमिदान ही नहीं, बल्कि श्रमदान, विद्यादान आदि) संसार में दुर्लभ है। इस सूक्ति

thearyasamaj.org

का यह आशय है कि सभासद, जनप्रतिनिधि इन मानव गुणों से अपने को परिपूर्ण बनाये रखे।

लिफ्ट क्रमांक चार पर शासक के राजधर्म पालन का मार्गदर्शन करने वाला शुक्रनीति का निम्न श्लोक लिखा हुआ है-

''सर्वदा स्यान्नृपः प्राज्ञः, स्वमते न कदाचन।
सभ्याधिकारिप्रकति-सभासत्सुमते स्थितः॥

शुक्रनीतिः (2/3)

इसका आशय यह है कि हमारी कार्यपालिका, प्रधानमंत्री और उनके मंत्रीमण्डल के सदस्य विद्वान् हों, किन्तु अपनी बात पर हठपूर्वक अड़े न रहें। उन्हें सभासदों के विचार और परामर्श से निर्णय लेना उचित है।

संसद भवन के इन संदेशों के परिप्रेक्ष्य में हमारा हृदय उन अपने पूर्व पुरुषों की सूझ-बूझ पर श्रद्धा से भर उठता है। आज के संसद सदस्यों के अनेक बार अनुचित निर्णयों को देखते हुये इन संदेशों का महत्व बहुत बढ़ जाता है।

जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से शीत निवृत्त हो जाता है वैसे परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष दुःख छूटकर परमेश्वर के गुण कर्म स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण कर्म स्वभाव पवित्र हो जाते हैं।

[सत्यार्थ. समु. 7]

पेज 39 का शेष....

यजुर्वेद के छठे अध्याय के 7 से 22 वें मन्त्र तक पशु को बांधना, देवता के लिये उसका बध करना, आहुति देने का भयानक चित्रण किया है। साथ ही यह भी प्रचलित कर दिया कि यज्ञ के लिये की गयी हिंसा, हिंसा नहीं होती। ऐसे कुकृत्य वेदों के साथ किया गया, जिसे पढ़कर विवेकशील व्यक्ति वेदों से विमुख हो गये। महर्षि दयानन्द ने वेदों के प्रमाण देकर यज्ञों में हिंसा का विरोध किया। उन्होंने यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र में ''पशू न पाहि'' पशुओं की रक्षा करने का उपदेश दिया। गौ को अघ्न्या अर्थात् हिंसा के अयोग्य बताया और गोमेघ का अर्थ गाय की हिंसा नहीं, अपित्तु इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना है, अश्वमेघ का अर्थ घोड़े को मारना नहीं अपितु प्रजा का पालन करना है। मृतक शरीर अर्थात् शव का अन्त्येष्टि संस्कार से, नरमेघ बताया। साथ ही यह भी बताया कि इनकी हिंसा करने वाले को सीसे की गोली से मार देना चाहिए। वेदों के नाम पर पशु हिंसा के कलंक को समाप्त करने का अद्‌भुत कार्य महर्षि ने अपने वेद-भाष्य के द्वारा किया। साथ ही वेदों को ईश्वरीय ज्ञान तथा सब सत्य विद्याओं की पुस्तक बतला कर वेदों के महत्व को बढ़ाया और वेदों को केवल कर्मकाण्ड तक ही सीमित नहीं रखा।

thearyasamaj.org

ज्ञान से मानव क्रियामान बनता है

लेखक- डा. अशोक आर्य, गाजियाबाद

हम सदा अभय रहें, हमारे में किसी प्रकार का उद्वेग न हो। हमारे यज्ञ में कभी रुकावट न आवे। हम सदा अपने ज्ञान, अपनी भक्ति तथा अपने कर्म का सदा विस्तार करें। हम जो ज्ञान पूर्वक कर्म करते हैं, वह ही भक्ति है तथा ज्ञान हम उसे ही मानते हैं, जो हमें सदा किसी न किसी क्रिया में लगाये रखते है। यजुर्वेद का यह प्रथम अध्याय का 23वां मन्त्र हमेंयह सन्देश इन शब्दों में दे रहा है :-

मा भेर्मा
सविक्थाऽअतमेरुर्यग्योऽतमेरुर्यजमानस्य प्रजा भूयात् त्रिताय त्वा द्विताय त्वैक्ताय त्वा ॥ यजु. 1.2.3 ॥

पूर्व मन्त्र में यह बताया गया था कि जिस व्यक्ति का सविता देव के द्वारा अच्छी व भली प्रकार से परिपाक हो जाता है, ऐसा व्यक्ति सदा ही किसी प्रकार से भी भयभीत नहीं होता। वह सदा निर्भय ही रहता है। ऐसे व्यक्ति में देवीय सम्पत्ति अर्थात् देवीय गुणों का विकास होता हैं, विस्तार होता है। यह विकास अभय अर्थात् भय रहित होने से ही होता है। इसलिये यह मन्त्र इस बात को ही आगे बढ़ाते हुए तीन बिन्दुओं पर विचार देते हुए उपदेश कर रहा है। कि :'

1. प्रभु वक्त को कभी भय नहीं होता :-

मन उपदेश कर रहा है कि हे प्राणी! तूं डर मत। तुझे किसी प्रकार का भय नहीं होना चाहिये। तूं प्रभू से डरने के कारण सदा प्रभु के आदेश का पलान करता है प्रभु की शरण में रहता है। जो प्रभु की शरण में रहता है, प्रभु के आदेशों का पालन करता है, वह संसार में सदा भय रहित हो कर विचरण करता है। अन्य किसी भी सांसारिक प्राणी से कभी भयभीत नहीं होता।

इसके उलट जो व्यक्ति उस परमपिता से कभी भय नहीं खाता, कभी भयभीत नहीं होता, ऐसा व्यक्ति संसार के सब प्राणियों से, सब अवस्था में भीरु ही बना रहता है, डरपोक ही बना रहता है, सदा सब से ही भयभीत ही रहता है, जबकि प्रभु से डरने वाला सदा निडर ही रहता है। इसलिए मन्त्र कह रहा है कि हे प्राणी! प्रभु से लगन लगा, किसी प्रकार से उद्वेग से तू डर मत, कम्पित मत हो, भयभीत न हो। तूं ठीक मार्ग पर, सुपथ पर चलने वाला है। सुपथ पर जाने वाले को कभी किसी प्रकार का भय, कम्पन नहीं होता।

2. हे प्राणी! तूं सच्चा प्रभु भक्त होने के कारण सदा योग्य करने में लगा रहता है किन्तु इस बात का स्मरण बनाये रखने कि तेरा यह योग्य कभी श्रान्त न हो, कभी बाधित न हो, कभी इसमें रुकावट न आने पावे। इसे अनवरत ही करते रहना। इस सब का भाव यह है कि तूं सदा यज्ञ करने वाला है तथा तेरी यह यज्ञीय भावना सदा बनी रहे, निरन्तर यज्ञ करने की भावना तेरी में बनी रहे। तूं सदा ऐसा यत्न कर

thearyasamaj.org

कि तेरी यह भावना कभी दूर न हो। इस सबका भाव यह ही है कि हम सदा यज्ञ करते रहें, परोपकार करते रहें, दूसरों की सहायता करते रहे। हमारी इस अभिरुचि में कोई कमीं न आवे। कभी कोई समय ऐसा न आवे कि हम इस यज्ञीय परम्परा को बाधित कर कुछ और ही करने लगें।

3. प्रभु यज्ञीय व्यक्ति को चाहता है:-

हम यह जो यज्ञ करते हैं, इस कारण हम प्रभु की सच्ची सन्तान है। मन्त्र कह रहा है कि प्रभु यज्ञीय को ही पसन्द करते हैं। वह यज्ञीय व्यक्ति को पुत्रवत् प्रेम करते हैं। वह नहीं चाहते कि उसकी सन्तान कभी उत्तम कर्म करते करते थक जावें। प्रभु अपनी सन्तान को सदा बिना थके कर्म करते हुए देखना चाहते हैं। निरन्तर कर्म में लिप्त रहना चाहते हैं। अकर्मा तो कभी होता देख ही नहीं सकते। इसके साथ ही मन्त्र यह भी कहता कि जो व्यक्ति सदा कर्म करते हुए अपने सब यज्ञीय कार्यो को सम्पनन करते हैं, ऐसे व्यक्तियों का सम्बन्ध परमपिता परमात्मा से सदा बना रहता है। वह कभी उस पिता से दूर नहीं होते। सदा प्रभु से जुड़े रहते हैं। कभी थकते नहीं, कभी विचलित नहीं होते, कभी भयभीत नहीं होते। उनकी निरन्तरता कभी टूटती नहीं। जो लोग प्रभु के नहीं केवल प्रकृति के ही उपासक होते हैं, वह कुछ ही समय में थक जाते हैं, शांत हो जाते हैं। ऐसे लोगों का जीवन विलासिता से भरा होता है। ऐसे लोग काम क्रोध, जुआ, नशा आदि के शिकार होने के कारण उनका शरीर जल्दी ही क्षीण हो जाता है, जल्दी ही कमजोर हो कर थक जाता है। अनेक प्रकार के रोग उन्हें घेर लेते हैं तथा अल्पायु हो जाते हैं।

मन्त्र आगे कह रहा है कि मानव को ज्ञान का प्रधान होना चाहिये, वह कर्म मे भी कभी पीछे न रहे तथा प्रभु भक्ति से भी कभी मुख न मोड़े। इसलिए ही मन्त्र उपदेश करते हुए कह रहा हैं कि प्रभु अपने भक्तों को, अपने पुत्रों, को, अपनी उपासना करने वाला के ज्ञान, उनके कर्म तथा उनकी उपासना में कभी कमी नहीं आने देते अपितु उन्हें अपने यह सब गुण बांटने के लिए प्रेरित करते हैं। वह प्राणी के इन गुणों को बांटने के लिए सदा उसे उत्साहित करते रहते है। इस का कारण है कि जो भक्ति ज्ञान्सहित की जावें, वह भक्ति कहाते हैं। इसलिए मन्त्र यह ही उपेदश करता कि तेरे ज्ञान तथा कर्म में निरन्तर विस्तार होते रहे, निरन्तर उन्नति होती रहे, निरन्तर आगे बढ़ता रहे।

मन्त्र यह भी कहता है कि हमारे जितने भी आवश्यक कर्म हैं, उन सब की प्रेरणा का स्रोत, उन सब की प्रेरणा का केन्द्र, उन सब की प्रेरणा का आधार ज्ञान ही होता है। इसलिए इस मन्त्र को बढ़ाने की और प्रेरित करता हूं, मैं तुझे अपने ज्ञान को निरन्तर बढ़ने के लिए आह्वान करता हूँ। यह तो सब जानते हैं कि ब्रह्मज्ञानियों में भी जो क्रियमान होता है, वह ही उत्तम माना जाता है, श्रेष्ठ माना जाता है। इसलिए हे प्राणी! तूं निरन्तर ऐसे कोर्य कर की जिससे तेरे ज्ञान का विस्तार होता चला जावें, कि जिससे तेरे ज्ञान को बढ़ावा मिले।

thearyasamaj.org

ऋषि दयानन्द जी द्वारा मृत्यु समय हे! ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो? वह कौन सी इच्छा की बात कर रहे हैं।

पं० उम्मेद सिंह विशारद

महर्षि दयानन्द जी द्वारा मृत्यु समय कहे अन्तिम शब्द इस प्रकार है, कि हे दयामय! हे सर्वशक्तिमान् ईश्वर! तेरी यही इच्छा है! तेरी इच्छा पूर्ण हो! आहा? तूने अच्छी लीला की। यही शब्द पं0 लेखराम जी व अन्य जीवनी लेखकों ने लिखे हैं। अतः महर्षि दयानन्द ईश्वर की किसी इच्छा की बात कर रहे हैं। क्या ईश्वर की इच्छा से उनकी मृत्यु हुई थी?

सामान्यतः अधिकांश श्रद्धालु यही मानते हैं कि ईश्वर की इच्छा से ही स्वामी जी की मृत्यु हुई। ऐसा मानना वेद के सिद्धांतों, आर्ष ग्रन्थों की मान्यताओं तथा स्वामी जी द्वारा रचित ग्रन्थों के आधार पर सर्वथा गलत होगा। यदि इस पक्ष को मान लें तो क्या स्वामी जी की मृत्यु परमात्मा की लीला थी। स्वामी जी ईश्वर की वाणी वेदों का प्रचार कर रहे थे व वेद भाष्य से भी कोई उत्तम कार्य था। सम्पूर्ण मानव जीवन में ईश्वर के बनाए वैदिक संविधान का प्रचार कर रहे थे। संसार में जो वेद विरूद्ध ईश्वरीय आज्ञा का उल्लंघन होकर अवैदिक कृत्य हो रहे थे, इनको रोकना क्या गलत था। ये सभी परमात्मा के कार्य हो रहे थे। भला ईश्वर इन शुभ कार्यों को क्यों रूकवाता। क्या नन्ही जान वेश्या का भी षड़यन्त्र रचना, अंग्रेजी सरकार द्वारा षड़यन्त्र द्वारा विष को और प्रभावी बनवाना तथा जगन्नाथ रेसोईये द्वारा कालूकूट विष देना, क्या परमात्मा की इच्छा से हुआ था और यह सभी कार्य स्वामी जी की मृत्यु के कारण बने थें क्या स्वामी जी के उपदेश गलत थे।

ऐसा मानने पर वस्तुतः न तो हमने स्वामी जी को समझा और नहीं उनके सिद्धांतो को समझा। अतः पौराणिक जगत व अन्य मतवालों को ऐसा मानने से एक मुद्दा मिल गया है। अतः स्वामी जी की मृत्यु का परमात्मा की इच्छा व लीला से कोई सम्बन्ध नहीं है। वह तो विभिन्न षड़यन्त्र रचने वालों की अपनी कर्म करने की स्वतन्त्रता थी। क्योंकि ईश्वरीय व्यवस्था में मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है, चाहे पुण्य कर्म करे या पाप कर्म करें और फल भोगने में परतन्त्र है।

समाधान- यह तो एक महान ईश्वर भक्त की अपने अन्तिम समय में परमात्मा के प्रति सच्ची श्रद्धा थी, जो इस प्रकार व्यक्त हुई और स्वामी जी के शब्द भी विचारणीय हैं, हे ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो। आहा? बहुत प्रसन्नता पूर्वक शब्द कहे गये थे, कि हे भगवान तेरे द्वारा जो

thearyasamaj.org

जीवों के कल्याण की इच्छा है, वह पूर्ण हो। स्वामी जी ने अपना सम्पूर्ण जीवन मानव मात्र के कल्याण के लिये लगाया था और इसी कल्याण की इच्छा अन्तिम समय में भी कर गये। एक महान ईश्वर भक्त जाते हुए किसी प्रकार की कोई शिकायत न करते हुए नहीं गया। इसलिए उनकी मृत्यु ईश्वर इच्छा से नहीं हुई, ईश्वर इच्छा से उनकी मृत्यु मानना, उनके सिद्धांतों व आर्ष ग्रन्थों के विरूद्ध होगा।

एक बात और- स्वामी जी की जीवनी पं० लेखराम जी द्वारा उनकी मृत्यु के पांच वर्ष बाद खोज की गयी और वह पूरा जीवन चरित्र नहीं लिख पाये थे कि 6 मार्च 1986 में पं० लेखराम की हत्या कर दी गयी। उसके उपरान्त जो स्वामी जी की जीवनी पर सामग्री एकत्रित की थी, उस पर लिखा गया। उसके बाद देवेन्द्र बाबू मुखोपाध्याय जी ने भी 15 वर्ष के लगभग उनकी जीवनी पर अनुसन्धान किया और वह भी पूरी जीवनी नहीं लिख पाये। केवल चार अध्याय ही लिख सके। वह भी मृत्यु को प्राप्त हुए और उसी सामग्री के आधार पं० घासीराम जी ने जीवन चरित्र पूरा किया।

अब विचार करना चाहिए- इतने वर्षों बाद लिखे गये अन्तिम शब्द वैसे ही कहे गये थे, वह पूर्णतया सम्भव नहीं हो सकता है। अगर जीवन में हम देखें तो किसी को दूसरे दिन उसी प्रकार अक्षरशः दोहराना सम्भव नहीं होता। यदि मान भी लें तो स्वामी जी के यह अन्तिम शब्द थे और ईश्वर की इच्छा से उनकी मृत्यु हुई। यह मानना सर्वथा वेद के विरूद्ध, स्वामी जी के सिद्धांतों के विरूद्ध होगा। इसलिए स्वामी जी द्वारा कहे गये शब्द ईश्वर द्वारा जीवों के कल्याण की इच्छा सही है। वहीं ईश्वर की इच्छा है इसी उद्देश्य से ही तो परमात्मा जगत की रचना बार-बार अनन्तकाल से करता चला आ रहा है और जीवों को अलग-अलग शरीर कर्मानुसार कल्याण के लिए देता रहता है। इस संसार में जीव मानव शरीर पाकर ही चरमलक्ष्य मुक्ति को प्राप्त कर सकता है। परमात्मा के वेद ज्ञान द्वारा ही मानव श्रेष्ठ कर्म कर सकता है। यही परमात्मा की इच्छा है। इसी इच्छा को पूर्ण होने की बात अन्तिम समय में स्वामी जी कर गये। परमात्मा की जगत को रचने तथा पालन करने की अच्छी लीला है, जिसको स्वामी जी कह रहे हैं।

आशा है आर्य जगत के लेखक व विद्वानजन इस विषय पर विचार करके उज्जवल पक्ष आर्य जगत में रखेंगे।

आर्य समाज को आर्ष ग्रन्थों व वेदानुकुल तथा महर्षि दयानन्द के सिद्धांतों के विरूद्ध कोई भी सिद्धांत नहीं मानना चाहिये।

thearyasamaj.org

आश्रम-व्यवस्था की उत्कृष्टता

-महात्मा चैतन्यमुनि

वैदिक धर्म की विलक्षणता एवं श्रेष्ठता यह है कि इसमें मानव जीवन के समग्र एवं पूर्ण विकास की संभावनाएं है। केवल मानव ही नहीं बल्कि जीव मात्र की उन्नति और प्रगति का विधिवत् विधान किया गया है। हमारे मनीषियों ने व्यक्ति की औसत आयु सौ वर्ष मानकर उसे चार बराबर भागों में बांटा है। इन्हें ही क्रमशः ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास-आश्रम कहा जाता है।

ब्रह्मचर्य-आश्रम- वैदिक धर्म ने आयु के प्रथम पच्चीस वर्षों को व्यक्ति की आंतरिक शक्तियों के विकास का समय माना है। ब्रह्मचारी का मुख्य लक्ष्य शारीरिक, मानसिक आत्मिक शक्तियों का विकाश करना। इस आयु में उसे सब प्रकार के दुषित वातावरण से दूर रखकर और गुरूकुलों में गुरू की शरण में रखा जाता था। उसे मन, वचन और कर्म से ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना होता था। यह बात बिल्कुल सत्य है कि अपने जीवन की आयु के इस भाग में व्यक्ति जो कुछ सीखता है जीवन के शेष भाग में अधिकतर उन्हीं संस्कारों का विकास होता है। यह आश्रम मानों उस भवन की नींव है जिसका आगे के जीवन में निर्माण होना हैं इसलिए नींव का सुदृढ़ होना बहुत ही जरूरी हैं ब्रह्मचर्य-आश्रम में अपने आचार्यों के संरक्षण में बालक को 24 वर्ष तक तथा बालिका को 16 वर्ष तक रहना होता था। यहां पर जहां एक ओर वे ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करते थे, वहीं दूसरी ओर आसन, व्यायाम, प्राणायाम आदि के द्वारा शारीरिक एवं मानसिक स्वस्थता और स्वच्छ, न्याय दया, संयम यम नियम आदि को व्यवहार में लाकर अपनी आत्मा का विकास करते थे। विद्यार्थियों की सच्चरित्रता को मध्यनजर रखते हुए बालकों तथा बालिकाओं के गुरूकुल अलग-अलग हुआ करते थे तथा उनका वातावरण पूर्णरूप से अनुसाशित और शान्त हुआ करता था। शिक्षक-वर्ग चरित्रवान तथा तपस्वी हुआ करता था। गुरूकुल में विद्यार्थियों को तमाम ज्ञान-विज्ञान के अतिरिक्त समस्त व्यवहारिक बातें भी सिखा दी जाती थी। ये सभी शिक्षाएं उसके भावी जीवन को सुखमय व समुज्वल बनाने वाली होती थी।

इन गुरूकुलों में अमीर-गरीब सभी बच्चों को एक सामान भोजन तथा अन्य सुविधाएँ आदि दी जाती थीं। चाहे कोई राजा

thearyasamaj.org

का लड़का हो और चाहे रंक का, सब के लिए गुरूकुलों में जाकर पढ़ना अनिवार्य होता था और यहां पर उच्च से उच्च शिक्षा पूर्णतया निःशुल्क दी जाती थी। पढ़ाने वाले आचार्य या गुरू लोग किसी से किसी प्रकार का शुल्क नहीं लेते थे तथा विद्यार्थियों को भोजन, वस्त्र आदि भी जनता या राज्य की ओर निःशुल्क दिए जाते थें। प्राचीन समय में भारतीय लोगों ने इसका बहुत ही सुन्दर और व्यवहारिक उपाय यह निकाला था कि गुरूकुल के ब्रह्मचारी आस-पास के गांवों या नगरों में भिक्षा मांगने जाते थे। उस भिक्षा के अन्न से वे स्वयं भी अपना भोजन करते थे और उनके गुरूओं की आवश्यकता की पूर्ति करना गृहस्थ लोग अपना दायित्व व धर्म समझते थे, किसी प्रकार का बोझ नहीं। भोजनादि के अतिरिक्त गुरूकुल के विद्यार्थियों और आचार्यों की अन्य जरूरतों की पूर्ति भी समाज के गृहस्थों द्वारा ही सहर्ष की जाती थी।

गृहस्थ-आश्रम : अपनी आन्तरिक शक्तियों का पूर्ण विकास करने और गुरूजनों से पूर्णतया दीक्षित हो जाने के बाद ब्रह्मचारी गृहस्थ-आश्रम में प्रवेश करता था। अर्थात् अपने गुण-कर्म व स्वभाव के अनुकूल कन्या के साथ वह विवाह करता था। वैदिक धर्म के अनुसार वह गृहस्थाश्रम भी केवल काम वासनाओं की पूर्ति भर के लिए नही होता था बल्कि देश को उत्तम सन्तान देने और धर्मानुसार जीवन यापन करने के लिए ही पति-पत्नी प्रतीज्ञा करते थे। यह गृहस्थ आश्रम ही अन्य आश्रमों का भी आधार है क्योंकि अन्य सभी आश्रमों का आरक्षण यह गृहस्थ ही करता था। इसके साथ-साथ यदि गृहस्थ से माता-पिता अच्छी सन्ताने पैदा करके देंगे तो इस समाज को अच्छे ब्रह्मचारी, अच्छे वानप्रस्थी और अच्छे संन्सासी मिल सकते है। इसलिए वास्तव में देखा जाए तो यह गृहस्थ आश्रम समाज और देश की उन्नति का मूलाधार है। यह जीवन का द्वितीय पड़ाव है। कम से कम पच्चीस वर्ष पुरूष और सोलह वर्ष आयु की कन्या का विधिवत् विवाह-संस्कार होता था। इस संस्कार में जो प्रक्रियाएं वर व वधु से कराई जाती है वे सभी गृहस्थ को सफल बनाने का आधार स्तंभ है। समाज को उत्तम संतान देना गृहस्थ का सबसे प्रमुख दायित्व है। समाज और राष्ट्र आज इसीलिए दुःखी है क्योंकि गृहस्थ से अच्छी सुयोग्य सन्तान नही निकल पा रही है। आज बच्चे तो पैदा हो रहे है मगर मानव पैदा नहीं हो रहे है क्योंकि उन्हें मानव बनाने का प्रयास ही नहीं किया जा रहा है। यदि मानव सही मानव बन जाए तो देश और समाज निश्चित रूप से सुखी और समृद्ध हो सकेगा।

thearyasamaj.org

मानव-निर्माण तभी हो सकता है यदि संस्कारों का महत्व समझकर विधिवत् उनका कार्यान्वयन किया जाए। गर्भाधान, पुंसवन और सीमन्तोनयन-संस्कार मानव निर्माण की आधारशिला है। उसके बाद जातकर्मादि सभी संस्कार करवाने अपेक्षित है। इसके साथ ही गृहस्थ के लिए आदेश है-

ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा।
नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत॥

(मनु० 4-21)

अर्थात् ब्रह्म-यज्ञ नित्य प्रति करें। प्रात:काल उठकर गृहस्थ को भी योगी की तरह परमात्मा का ध्यान करना चाहिए ऐसा महर्षि जी का आदेश है। इसके साथ ही स्वाध्याय अर्थात् सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय भी गृहस्थ को बिना नागा करना अपेक्षित है। इसके बाद दूसरा यज्ञ है-देव-यज्ञ इसका भाव है देवपूजा, संगतिकरण और दान आदि को न त्यागना तथा प्रतिदिन अग्निहोत्र करना। तीसरा यज्ञ है- पितृ-यज्ञ। जीवित मां-बाप और बुजुर्गों की निरन्तर सेवा करते रहना। इससे आगे है- अतिथि-यज्ञ। धर्मात्मा और परोपकारी जनों का जल, आसन और अन्न-वस्त्र आदि से आदर सत्कार करते रहना ही अथिति-यज्ञ है। इसके अतिरिक्त पांचवां यज्ञ है- बलिवैश्वदेव-यज्ञ। अर्थात् समस्त प्राणीमात्र के प्रति दया का भाव रखना ही बलिवैश्वदेव-यज्ञ है। इस प्रकार इन पांच महायज्ञों के माध्यम से गृहस्थ पूर्ण रूप से अपने दायित्वों का निर्वहन कर सकता है। उपरोक्त नियमों और आदर्शों पर चलकर ही गृहस्थ अपनी श्रेष्ठता का प्रतीक बन सकता है तथा इसी प्रकार से वह अपनी और अपने समाज और देश की समस्त समस्याओं का समाधान कर पाने में समर्थ हो सकता है। आज हमारे गृहस्थ और समाज के बिगड़ने का सबसे बड़ा कारण यही है कि हम लोगों ने पुरानी वैदिक मर्यादाओं को पूर्णरूप से तिलांजलि दे दी है। जो गृहस्थ स्वर्ग और सुख से परिपूर्ण होने चाहिए थे वहां आज बैर-वैमनस्य के कीटाणु बुरी तरह से घुस आए हैं जिससे न केवल व्यक्तियों का जीवन दु:खी है बल्कि उसका प्रभाव समाज और देश पर भी पड़ रहा है। इसलिए गृहस्थ का सुधारना ही मानों सब प्रकार के सुधारों का आधार है।

वानप्रस्थ-आश्रम- मनुजी कहते है कि इस प्रकार स्नातक अर्थात् ब्रह्मचर्यपूर्वक गृहाश्रम का कर्ता द्विज, अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य गृहाश्रम में ठहरकर निश्चितात्मा और यथावत् इन्द्रियों को जीतके वन में वसे। परन्तु जब गृहस्थ के सिर केश श्वेत और त्वचा ढीली हो जाए और लड़के का लड़का भी हो गया हो, तब वन में जाके बसे। ग्राम के सब आहार और

thearyasamaj.org

वस्त्रादि सब उत्तमोत्सव पदार्थों का छोड़ पुत्रों के पास स्त्री को रख, वा अपने साथ लेके वन में निवास करें सांगोपांग अग्निहोत्र को लेके ग्राम से निकल दृढ़न्द्रिय होकर अरण्य में जाके बसे। नाना प्रकार के सामान आदि अन्न, सुन्दर-सुन्दर शाक, मूल, फल, फूल, कन्दादि से पूर्वोक्त पंचमहायज्ञों को करे और उसी से अतिथि सेवा और आप भी निर्वाह करे। इन पंक्तियों में वानप्रस्थ होने और उसके प्रांरभिक कर्त्तव्यों का साफ संकेत मिलता है। गृहस्थ-आश्रम जीवन का केवल द्वितीय पड़ाव मात्र है, अंतिम पड़ाव नहीं। अपने जीवन को सार्थकता और पूर्णतया देने के लिए गृहस्थ से ही चिपक कर नहीं रहना है बल्कि अपने कर्त्तव्यों का भली प्रकार से निर्वहन करने के बाद तथा सब प्रकार के भोगों को त्यागमय भावना से भोगने के बाद वानप्रस्थी बनकर और आगे बढ़ना अपेक्षित है। पच्चीस वर्ष तक गृहस्थ में रहने के बाद अर्थात् जब व्यक्ति पच्चास वर्ष पूर्ण कर ले तथा बच्चों के भी आगे बच्चे हो जाएं और सिर आदि के बाल पक जाएं तो उसे गृहस्थ का भी त्याग कर देना चाहिए। इस प्रकार गृहस्थ भी मानों अगले आश्रम अर्थात् वानप्रस्थ होने के तैयारी मात्र ही है। वानप्रस्थी बनकर व्यक्ति को पूरी तरह परोपकार के कार्यों में लग जाना चाहिए। वानप्रस्थ होकर व्यक्ति का जीवन तपमय होना जरूरी है तभी वह स्वयं को परोपकार के कार्यों में लगा सकेगा।

वानप्रस्थी की मर्यादाओं और कर्त्तव्यों के बारे में कहा गया है कि स्वाध्याय अर्थात् पढ़ने पढ़ाने में निम्य युक्त, जितात्मा, सबका मित्र, इन्द्रियों का दमनशील, विद्यादि का दान देनेहारा, और सब पर दयालु किसी से कुछ भी पदार्थ न लेवे। इस प्रकार सदा वर्तमान करे। शरीर के सुख के लिए अति प्रयत्न न करे, किन्तु ब्रह्मचारी रहे, अर्थात् अपनी स्त्री साथ हो तथापि उससे विषय-चेष्टा कुछ न करे। भूमि में सो, अपने आश्रित वा स्वयं की पदार्थों में ममता न करे, वृक्ष के मूल में बसे। श्रद्धा और आस्था के साथ अपने धर्मानुष्ठान में लगकर परमात्मा की भक्ति करने वाला ही वानप्रस्थी होता है। उपनिषद् का कथन (मुण्ड० 1-2-11) है- जो शान्त, विद्वान् लोग वन में तप-धर्मानुष्ठान और सत्य की श्रद्धा करके भिक्षाचरण करते हुए जंगल में वसते हैं, वे जहां नाशरहित, पूर्णपुरूष, हानि-लाभ-रहित परमात्मा है, वहां निर्लेप होकर प्राणद्वार से उस परमात्मा को प्राप्त होके आनन्दित हो जाते है। वानप्रस्थ को उचित (यजु० 20-24) है कि- वे अग्नि में होम कर, दीक्षित होकर, व्रत सत्यानारायण और श्रद्धा से प्रापत होऊँ, ऐसी इच्छा करके वानप्रस्थ हो नाना प्रकार की तपचर्या, सत्संग, योगाभ्यास,

thearyasamaj.org

सुविचार से ज्ञान और पवित्रता प्राप्त करें।'

इस प्रकार वानप्रस्थी को कन्दमूल का सेवन एवं पंच महायज्ञों का पालन करना जरूरी कर्त्तव्य बताया गया है। नित्य स्वाध्याय करना, जितेन्द्रिय रहना, सब प्राणियों के साथ मित्रता, इन्द्रियों का दमन करना, विद्या-शिक्षा आदि गुणों का दान, सब पर दया का भाव रखना, शरीर सुख से विमुखता एवं ब्रह्मचर्य का पालन, राग-द्वैष-मोह आदि विकारों से दूर रहकर विद्या-शिक्षा आदि का नि:शुल्क दान वानप्रस्थी द्वारा करना अपेक्षित है। उसका जीवन पूर्णरूप से त्याग और सादगी से भरा होता था। क्योंकि वह क्रमिक विकास के तीसरे पड़ाव में पहुंचा होता है अत: यहां तक आते आते उसमें विशेष प्रकार के वैराग्य के गुणों का प्रस्फुटन होता था ताकि वह पूर्ण रूप से चौथे आश्रम में प्रवेश कर सके। जैसा कि पहले कहा गया है कि ब्रह्मचर्य आश्रम से प्रारंभ होकर आगे के आश्रम क्रमश: व्यक्ति का पूर्णतया की ओर ले जाने वाले होते है तथा इसीलिए जीवन को सफलता का आयाम देने के लिए उसे अधिक से और अधिक तप तथा प्रयास करना पड़ता है। वानप्रस्थ के रूप में पूरी तरह तपने के बाद वह चतुर्थ आश्रम मेंसहजता से प्रवेश करता था।

संन्यास-आश्रम- वानप्रस्थ-आश्रम भी मानव जीवन को पूर्णता देने के लिए एक पड़ाव ही था। इसके बाद उस अन्तिम अर्थात् संन्यास-आश्रम में प्रवेश करना था। संन्यासी वास्तव में समाज में सर्वोपरि होता था। महर्षि जी ने इस सम्बन्ध में यहां तक कहा है कि- जैसें सम्राट् चक्रवर्ती राजा होता है, जैसे परिव्राट् संन्यासी होता हैं प्रच्चुत् राजा अपने देश में वा स्वसम्बन्धियों में सत्कार पाता हैं, और संन्यासी सर्वत्र पूजित होता है। इस सम्बन्ध में कहा गया है कि (चाणक्यनीतिशस्त्र) 'विद्वान् और राजा की कभी तुल्यता नहीं हो सकती, क्योंकि राजा अपने राज्य ही में मान और सत्कार पाता है, और विद्वान् सर्वत्र मान और प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है।'

संन्यासी की इस श्रेष्ठता के पीछे उसकी योग्यता को ही आधार माना जा सकता है अन्यथा आज भी कई प्रकार के तथाकथित भगवे वस्त्रधारी गलियों में लोगों को मूर्ख बनाते हुए फिरते रहते है.....। अत: केवल वस्त्रों का बदल लेना भर ही संन्यासी हो जाना नहीं है बल्कि जैसे ब्रह्मचारी, गृहस्थ और वानप्रस्थ के गुण-कर्म-स्वभाव सन्यांसी बन सकता है। पच्छत्तर वर्ष की आयु पूर्ण हो जाने पर व्यक्ति को पूर्णत: परमात्मा के प्रति समर्पित हो जाना चाहिए। भगवे वस्त्र इसीलिए पहने जाते हैं क्योंकि ये ब्रह्माग्नि के प्रतीक है। संन्यासी बनने के बाद व्यक्ति किसी प्रकार की सीमाओं में न

thearyasamaj.org

बन्धकर वह पूरे संसार का हो जाता था। वह पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकेषणा से उपर उठकर पूर्णरूप से पावन पवित्र हो जाता था। इसीलिए योग्यता के आधार पर महर्षि जी ने केवल ब्राह्मण को ही संयासी होने का निर्देश दिया है। जब तक हमारे समाज में इस प्रकार के निस्पृह, परोपकारी, जितेन्द्रि और विद्यावान् संन्यासी थे तब तक हमारा समाज सुख और शान्ति का घर था मगर आज ऐसे उच्च संन्यासियों के अभाव के कारण ही व्यक्ति, परिवार, समाज और देश दुःखी है। इसलिए आज भी इस प्रकार के संन्यासियों की जरूरत है ताकि हम पुनः अपनी सुख-शान्ति और समृद्धि को प्राप्त कर सकें।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि यह वैदिक आश्रम-व्यवस्था पूर्णतया वैज्ञानिक, सर्वकालिक, सार्व-भौमिक और व्यक्ति शारीरिक, मानसिक और सामाजिक उन्नति के शिखर पर पहुंच सकता है। यह व्यवस्था किसी भी व्यक्ति को यह अनुभव नहीं होने देती है कि वह परिवार, समाज या देश के किसी काम नहीं आ सकता है बल्कि सभी का उत्तरदायित्व स्थापित करते हुए सबकी हिस्सेदारी सुनिश्चित करती है। वैदिक आश्रम-व्यवस्था आजकल की साम्यवादी और पूंजीवादी पद्धतियों से एकदम अधिक व्यवहारिक और उत्कृष्ट है। इस व्यवस्था में इन दोनों पद्धतियों के गुण तो है ही मगर दोष नहीं है। साम्यवादी-व्यवस्था केवल भौतिकवादी होने के कारण नितांत एक पक्षीय है। इसमें आध्यात्मिकता के लिए कोई स्थान नहीं है। व्यक्ति के स्वतंन्त्र चिन्तन और आचरण पर भी साम्यवादी-व्यवस्था ने बिल्कुल भी ध्यान नहीं दिया है इसलिए नैतिकता और धार्मिकता के अभाव में यह व्यवस्था एकदम अधूरी और अव्यवहारिक है। इसी प्रकार पूंजीवादी व्यवस्था भी व्यक्ति के केवल भौतिक या आर्थिक जीवन पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करती है। घोर स्वार्थ-परायणता पर आधारित इस व्यवस्था ने भी गरीब को और गरीब तथा अमीर को और अधिक अमीर बनाने की ओर ही अग्रसर किया है तथा धन का रोग लगाकर लोगों के लिए भ्रष्टाचार का मार्ग प्रशस्त किया है। वैदिक आश्रम व्यवस्था ने व्यक्ति को व्यक्तिगत उन्नति के साथ-साथ समाज और राष्ट्र के प्रति उसकी सांझेदारी सुनिश्चित की है और साथ ही उनके उत्तरदायित्व सुनिश्चित किए है। इसके साथ-साथ इस पद्धति में भौतिक और आध्यात्मिकता का अद्भुत समिश्रण है। वैदिक आश्रम-व्यवस्था की सर्वाधिक विशेषता इसके त्यागभाव में निहित है। दान एवं परोपकार की भावना तथा सम्पत्ति का भोग बांटकर करना इसका उत्कृष्टतम स्वरूप है। धार्मिकता का अंकुश निरन्तर इसे स्वेच्छाचारिता से मुक्त करता है। इसलिए यह ध्रुव सत्य है कि वैदिक आश्रम-व्यवस्था में ही समाज का समग्र सुख निहित है।

वैदिक वशिष्ठ आश्रम, (महर्षि दयानन्द धाम)
महादेव, सुन्दरनगर-174401
हिमाचल प्रदेश

thearyasamaj.org

आस्था के दलदल में

-राजेन्द्र प्र० आर्य, मुज०

आज लोगों को जिस नाम पर सबसे ज्यादा ब्लेकमेल किया जाता है वो नाम है भगवान का, और अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु प्राय: सभी धर्माधिकारियों ने अपने-अपने धर्मावलब्यिों को इस बात की सख्त हिदायत दे रखी है कि धर्म और ईश्वर के विषय में बुद्धि का प्रयोग सर्वथा वर्जित है, यह पूरी तरह से आस्था का विषय है। यही कारण है कि लोग ईश्वर के विषय में बताई गई तमाम बातें ठीक उसी तरह मान लेते है जिस प्रकार उन्हे बताया गया है, और एक बार जब बिना जाने हुए सब मान लेते है तब फिर कुछ जानना भी नहीं चाहते। सिर्फ वैदिक धर्म में ही जिसका आधार वेद है में किसी बात को तर्क और प्रमाण की कसौटी पर कसकर बुद्धिमता पूर्वक विचार कर मानने का निर्देश है। यदि आस्था के नाम पर व्यक्ति को यह स्वतंत्रता है कि वो जो वाहे माने तो आस्था के नाम पर ही ईश्वर को खुश करने वास्ते बलि और नरवलि देना गलत कैसे? इसे मात्र एक उदाहरण से समझा जा सकता है:-

इसे बहुत कम लोग जानते होंगे पर विज्ञान के अनुसार सूर्य का आकार पृथ्वी के आकार से 13 लाख गुणा बड़ा है अर्थात् 13 लाख पृथ्वी को मिलाकर एक सूर्य का आकार बनता है, और सूर्य की दूरी पृथ्वी से 9 करोड़ माइल दूर है, इतना ही नहीं सूर्य एक जलता हुआ आग का गोला है और सूर्य की उर्जा मात्र 2 अरब भाग ही पृथ्वी तक पहुँचता है, अगर सूर्य का सम्पूर्ण उर्जा पृथ्वी तक पहुँच जाय तो सबकुछ जलकर भष्म हो जाएगा। कुछ भी नहीं बचेगा मगर इसी सूर्य के विषय में तुलसी दास ने लिख दिया कि सूर्य को हनुमान जी निगल गये। यह बात किसी के बुद्धि में समाहित नहीं हो सकता, फिर भी लोग इसे सत्य मानते इसलिए है कि रामचरित्र मानस के रचियता और इतने बड़े रामभक्त भला गलत कैसे लिख सकते हैं। तो यह है अन्ध आस्था का प्रमाण।

अभी अभी साई पूजा को लेकर शंकराचार्य और साई भक्तों के बीच बड़ी बहस छिड़ गई है जो कि एक बवंडर का रूप लेता जा रहा है हालांकि इसका कोई सार्थक परिणाम निकलने वाला नहीं है क्योंकि दोनों ही वेद विरुद्ध है, फिर भी हम चाहते है कि यह बहस किसी निर्णायक परिणति तक पहुँचे ताकि सत्य का आचरण हो सके। शंकराचार्य का साईं बाबा पर सबसे बड़ा आरोप यह है कि हिन्दू धर्म में

thearyasamaj.org

मात्र 24 अवतारों का ही उल्लेख है तो फिर पच्चीसवां अवतार के रुप में साई बाबा कैसे? तो इस सम्बन्ध में हमारा यह कहना है कि हिन्दू धर्म के शास्त्रों में जब मात्र 24 अवतारों का ही उल्लेख है तो हम यह जानना चाहते है कि हिन्दू धर्म के किस शास्त्र में हिन्दू शब्द का उल्लेख है? और अगर नहीं है तो हम हिन्दू क्यों है वा क्यों नहीं जिसके नाम पर इस देश का पुरातन नाम आर्यावर्त रहा हैं शंकराचार्य का दूसरा आरोप है कि साईं पूजा के नाम पर हिन्दू धर्म को बांटने का षड़्यंत्र है। तो इस सम्बन्ध में हमारा कहना है कि हिन्दू धर्म तो पहले से ही अनेकों टुकड़ों में विभक्त है और जिस एक शब्द के वजह से हिन्दू धर्म अनेकों टुकड़ों में बटा हुआ है वो शब्द है अवतार। और जब तक यह शब्द अवतार विद्यमान रहेगा तब तक हिन्दुओं में एकता कभी भी स्थापित नहीं होगा। और आगे भी अवतार होता रहेगा तथा हिन्दू बटते रहेंगे। अनुयायियों की तो बात छोड़िए हमारे धर्माचार्य भी अनेक टुकड़े में बंटे हुए है। आज ही टी0 भी0 पर धर्माचार्यो की जो बड़ी बहस देखने को मिल रहा है, उससे भी पता चलता है कि धर्माचार्यों में भी कितना विघटन है, इसे देखकर यह आश्चर्य होता है किसी भी धर्माचार्य को ईश्वरीय ज्ञान वेद से पूछने की जरूरत नहीं है कि आखिर वेद क्या कहता है जिसे मनुस्मृति ने लिखा है "वेदोंऽ खिलो धर्म मूलम" अर्थात् वेद ही धर्म का मूल है। तो थोड़ा वेद से पूछकर देखे कि ईश्वर कौन है? उसके क्या सब गुण है, और वह क्या करता है। तो वेद के अनुसार:-

1. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते है उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

2. ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकर, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वाअन्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है तो ये सब ईश्वर के गुण है इसलिए एकमात्र उसी की उपासना करनी चाहिए।

3. ईश्वर चूंकि अजन्मा है इसलिए मरण भी नहीं होता हैं 8 अरब 32 करोड़ वर्ष का सृष्टि काल होता है इतना ही प्रलय काल होता है तो ईश्वर वो है जो सृष्टिकाल के पहले भी विद्यमान था और प्रलयकाल के बाद भी विद्यमान रहेगा। अवतार तो हम सभी का होता है, ईश्वर का नहीं। वह आने जाने वालों में नहीं है क्योंकि वह तो कर्मकाल दाता है, कर्मफल भोक्ता नहीं। ईश्वर, जीव और प्रकृति ये तीन अनादि सत्तायें है। अवतार महान आत्माओं का होता है, दिव्य आत्माओं का होता है परम आत्मा का नहीं। ईश्वर कभी मरता नहीं, क्यों

thearyasamaj.org

लेवे अवतार। जीव शरीर धारण करें, अपने कर्मानुसार।।

दुर्भाग्य है हिन्दू समाज का जिसने वेदों को लाल कपड़े में बाँध कर रख दिया है और सिर्फ नाम भर लेते है। हमारे धर्माचार्य भी वेदों से इतना दूर क्यों है? इसके दो कारण है प्रथम तो यह कि वेदों तक उनकी पहुँच नहीं है और दूसरा यह है कि अगर वेदों तक उनकी पहुँच भी है तो उनमें वेदों के पन्ने को पलटने का साहस नहीं क्योंकि इसके बाद ढोंग, पाखण्ड, गुरुडम, आडम्बर एवं अन्धविश्वास को फैलाया नहीं जा सकता, उनका धर्म का व्यापार ही ठप पड़ जायेगा। वेदों के इस मंत्र का किसी के पास क्या जवाब है- न तस्य प्रतिभा अस्ति यसस्य नाम महाशय'' अर्थात् ईश्वर की कोई मूर्ति नहीं हो सकता क्योंकि उस महान यश वाले ईश्वर का कोई आकार नहीं है। इसलिए इन धर्मा चार्यों का बहस ही निराधार एवं वेद विरुद्ध है।

नि:संदेह साईबाबा एक उच्च कोटि के साधक थे जो सच्चे अर्थों में ईश्वर के भक्त थे। उनका कहना था कि सबका मालिक एक है तो क्या यह उन्होंने अपने बारे में कहा था, तो उनके भक्तजन उनकी भक्ति में क्यों नहीं लगते जिनके बारे में उन्होंने कहा था हालांकि यह कोई नई बात नहीं, वेद ने भी बहुत पहले ही कहा है कि ''एको विश्वस्य भुवस्य राजा'' अर्थात् सम्पूर्ण भूमंडल का स्वमी एक है। तो साई बाबा के पहले भी ईश्वर था और साई बाबा के बाद भी ईश्वर था और साई बाबा के बाद भी ईश्वर रहेगा। अत: उनकी उपासना में सब लगे।

अगर धर्माचार्यों को वहस ही करनी है तो सारे धर्माचार्य मिल बैठकर इन समस्याओं का कारण और निराकरण खोजें कि आखिर क्यों?

1. दुनियां में सारे मुसलमान लगभग एक है, सारी ईसाई एक है, सारे बौद्ध एक है, सारे पारसी एक है तो फिर हिन्दू एक क्यों नहीं? यहां तक कि उनके मस्जिद एक है, गिरिजा घर एक है, बौद्ध मठ एक है, तो हमारे मन्दिर एक क्यों नहीं।

2. सारी दुनियां को एकेश्वरवाद का संदेश देने वाली आर्यजाति आज खुद क्यों बहुदेवताबाद के दलदल में फँस गई है।

3. कभी दुनियां में केवल आर्य धर्म था और आर्य धर्म से ही सभी उत्पन्न हुए फिर आज हम क्यों विश्व समुदाय के सामने अल्पसंख्यक है।

4. पूरी दुनिया में केवल सनातन वैदिक धर्म ही धर्म है वाकी सभी मत पथ एवं सम्प्रदाय है क्योंकि उन मतों के कोई प्रवर्तक है पर क्यों कोई बता सकता है कि आर्यधर्म के प्रणेता कौन है फिर भी हमारी स्थिति ऐसी कैसे बन गई कि हम विनाश के कगार पर आ गए।

शेष पेज 3 पर.........

thearyasamaj.org

"महर्षि का वेद-भाग तर्क व विज्ञान पर आधारित है"

लेखक- खुसहाल चन्द्र आर्य, कोलकाता

यह लेख मैंने आदरणीय डॉ० सोमदेव जी शास्त्री द्वारा लिखित "यजुर्वेद सन्देश" पुस्तिका से उद्घृत किया है। डॉ० साहब आर्य जगत् के एक ऊँच कोटि के प्रतिष्ठित वैदिक विद्वान है। सभी आर्यजन इनको श्रद्धा व सम्मान की दृष्टि से देखते है। प्रसन्नता की बात यह है कि डॉ० साहब मेरे परिवार से विशेष रूप से जुड़े हुए है। मेरे परिवार वालों ने मेरे स्व० पिता गोविन्द राम आर्य (प्रधान जी) की पुण्य स्मृति में "आर्श आर्य प्रवर" शीर्षक की पुस्तक छपवाई थी। उसका सम्पादन डॉ० साहब ने ही किया था, जिसकी सभी लोगों ने बड़ी प्रशंसा की थी। इसी पुस्तक के उद्घाटन के समय सोमदेव जी मेरे गांव देवराला (हरियाणा) भी गये थे। मेरे पूरे परिवार से इनका घनिष्ट सम्बन्ध है। कलकत्ता में मेरे घर को भी इन्होंने कई बार पवित्र किया है। इस प्रकार ये मेरे पूरे परिवार से पूर्ण परिचित है।

इनकी पुस्तक "यजुर्वेद सन्देश" को पढ़ने से इनकी प्रकाण्ड विद्वता का परिचय मिल जाता है। इस पुस्तक के पढ़ने से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि महर्षि देव दयानन्द का वेद-भाष्य, अन्य भाष्यकारों से कहीं अधिक सार्थक और सही है जो तर्क और विज्ञान की कसौटी पर खरा उतरता है। पहले के भाष्यकार वेदों में हिंसा, इतिहास तथा केवल कर्मकाण्ड के ही मानते थे। परन्तु महर्षि ने वेदों के सही अर्थ लगाकार यह बतला दिया कि वेदों में कहीं पर भी हिंसा नहीं है और न ही इनमें इतिहास है वेद केवल कर्मकाण्ड के ही नहीं बल्कि सब सत्य विद्याओं के ग्रन्थ है। महर्षि ने यह सिद्ध करके मानव-मात्र का बड़ा उपकार व कल्याण किया है। इसी भावना से प्रेरित होकर मैंने भी जो लेख लिखा है, इसे पढ़कर मैं आशा करता हूँ कि सुधि पाठकगण वेदों के ही स्वरूप को समझ पायेंगे। यही मेरी उपलब्धि होगी। लेख इसी भाँति है।

2. मध्यकालीन वेद भाष्यकार :- मध्यकाल में अनेक वेद भाष्यकार हुए हैं जिन्होंने वेदों का या वेद के कुछ हिस्सों का भाष्य किया है। विक्रम संवत 687 में स्कन्द स्वामी ने ऋग्वेद के प्रथम अष्टक के 4-5 सूक्तों का आधियाज्ञिक प्रक्रिया (कर्मकाण्ड परक) वेदभाष्य किया। स्कन्द स्वामी के समय ही दैदगीथ हुए हैं, उन्होंने ऋग्वेद के दसवें मण्डल के पांचवे सूक्त के चौथे मन्त्र से 86 सूक्त के 6 मन्त्र तक वेद

thearyasamaj.org

भाष्य किया। यह भाष्य भी कर्मकाण्ड परक ही है। विक्रम संवत् की 12वीं शताब्दी में वेंकट माधव ने ऋग्वेद का आधियाज्ञिक प्रक्रिया के अनुसार भाष्य किया। विक्रम संवत् की 13वीं शताब्दी में आत्मानन्द ने ऋग्वेद के अस्यवामीय सूक्त (ऋग्वेद के पहले मण्डल के 164 सूक्त) का आध्यात्मिक प्रक्रियानुसार भाष्य किया। आनन्द तीर्थ ने (विक्रम संवत् 1255-1335) ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के चालीस सूक्तों का आध्यात्मिक भाष्य किया। सायणा चार्य (विक्रम संवत् 1372- 1442) ने सम्पूर्ण ऋग्वेद का (बाल खिल्य सूक्तों को छोड़कर) आधियाज्ञिक प्रक्रिया परक भाष्य किया। कहीं-कहीं आध्यात्मिक प्रक्रिया नुसार अर्थ भी किये हैं।

उवट (विक्रम संवत् 1100) ने यजुर्वेद का भाष्य किया जो कर्मकाण्ड परक भाष्य है। महीधर (विक्रम संवत् 1645) ने भी यजुर्वेद का भाष्य याज्ञिक प्रक्रियानुसार दिया। इन दोनों भाष्यकारों ने यजुर्वेद के प्रत्येक मंत्र को यज्ञ में होने वाली प्रक्रियाओं के साथ जोड़ा। गोमेध, अश्मेवधादि शब्दादि का अनर्थ पशु हिंसा जैसा जधन्य कृत्य को यजुर्वेद के मंत्रों द्वारा प्रतिपादि दिया। यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा का भाष्य यह भास्कर में बिक्रम संवत् 1100 में किया तथा इसी शाखा का सायण ने सी भाष्य किया। भरत अश्मेभरत स्वामी ने विक्रम संवत् 1360 के लगभग किया, धर्मकाण्ड परक अर्थों के साथ-साथ कहीं-कहीं अध्यात्म परक अर्थ भी किये। माधव जो विक्रम की सातवीं शताब्दी में हुए, उन्होंने भी सामवेद का भाष्य किया। आधियाज्ञिक प्रक्रिया के अतिरिक्त कुछ मन्त्रों का आध्यात्मिक अर्थ भी किया। अपने भाष्य में ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रमाण भी उद्घृत किये। भरत स्वामी और माधव के अतिरिक्त सायण ने भी सामवेद का भाष्य किया। अथर्ववेद का मध्यकालीन आचार्यों में केवल सायण ने ही भाष्य किया। इसमें उन्होंने मन्त्र-तन्त्र, जादू-टोना, कृत्य, व्यभिचार (हिंसा) आदि कृन्यों का वर्णन भाष्य करते हुए किया।

मध्यकालीन सभी प्राचार्यों ने अपने भाष्यों में मुख्य रूप से याज्ञिक कर्मकाण्ड का वर्णन किया। इसमें भी पशु हिंसा, मांस भक्षण, जादू-टोना, मारण उच्चारन, अग्नि-इन्द्रादि देवता देवताओं का सशरीर स्वर्ग में निवास, उनका परिवार सहित सुख ऐश्वर्यों को भोगना, मूल की हवि (आहूति) का भक्षण करने के लिए स्वर्ग से अदृष्य रूप में यज्ञ स्थल पर आना और यजमान को आशीर्वाद देना, मरने के बाद यजमान को स्वर्ग ले जाना आदि अनेक मिथ्या विचार धारा वेद के नाम पर प्रचलित करने का कार्य किया।

thearyasamaj.org

जिससे सामान्य जनता वेदों से विमुख हो गई। वेद केवल कुछ व्यक्ति विशेष (ब्रह्मणों) के लिए ही हैं जो याज्ञिक कर्मकाण्ड कराते हैं, इसी प्रकार वेद केवल याज्ञिक कर्मकाण्ड के लिये ही उपयोगी है। यह प्रसिद्ध कर दिया गया। इस प्रकार जन सामान्य की वेद से रूचि हट गई। वेद कथा, वेद प्रवचन प्रचारादि के स्थान पर भागवत गीता, उपनिषद् और सत्य नारायण आदि की कथा तथा प्रवचनादि प्रचलित हो गये।

पाश्चात्य विद्वान् :- आधुनिक युग (18वीं, 19वीं शताब्दी) में वेदों पर भारत के अतिरिक्त पाश्चात्य देशों के विद्वानों ने भी कार्य किया। सन् 1850 में डॉ० एच-एच विल्सन ने सायण भाष्य के आधार पर ऋग्वेद का अंग्रेजी में अनुवाद किया। प्रो० मैक्समूलर के तथा सायण भाष्य के सम्पादन का भी परिश्रम साध्य कार्य किया। जर्मन भाषा में ऋग्वेद का पद्यानुवाद जर्मन विद्वान ग्रास मान ने सन् 1876-1877 में किया।

इसी प्रकार जर्मन विद्वान् ए. लुडविग, एच. ओल्डन वर्ग ने ऋग्वेद का जर्मन अनुवाद किया। आर.टी.एच. गिफिथ ने (सन् 1881-1898) चारों वेदों का अंग्रेजी में पद्यानुसार किया। लोगल्वा नामक, फ्रांसीसी विद्वान् ने फ्रेंच भाषा में ऋग्वेद का अनुवाद किया। डॉ० कीथ ने तैतिरीय संहिता का अंग्रेजी में अनुवाद किया। थियोडोर बेन्फे ने (सन् 1848 में) सामवेद (कौथुम शाखा) का जर्मन अनुवाद किया। अथर्ववेद (शौनक संहिता) का W.H. .... ने तथा अथर्ववेद (पैप्पलाद शाखा) का ब्लूम फील्ड ने अंग्रेजी अनुवाद करके सन् 1901 में प्रकाशित किया। इस प्रकार विदेशों में वेदों पर विगत दो सौ वर्षों से बहुत कार्य हुआ।

महर्षि दयानन्दः- महर्षि दयानन्द ने बहुत थोड़े समय में, वेदों का प्रचार-प्रसार करना, ईश्वर, धर्म और वेदों के नाम पर प्रचलित पाखण्ड और अन्धविश्वास का खण्डन करना, शंका समाधान करना, शास्त्रार्थ करना, अपने आप में एक अद्भुत कार्य उन्होंने किया। स्वार्थी और मूर्ख व्यक्तियों ने उन पर ईंट-पत्थर फेंके, खाने में विष मिलाया, कुटिया में आग लगाई, ध्यान में बैठे हुए को नदी में फेंका आदि दुष्कृत्य किये किन्तु गुरू भक्त एवं प्रभु विश्वासी देव दयानन्द लक्ष्य से कभी विचलित नहीं हुए और गुरू को दिया वचन उन्होंने आजीवन निभाया।

मध्यकालीन आचार्यों ने यजुर्वेद का भाष्य करते हुए उव्वट और महीधर ने गो, मेघ, अश्वमेध, नरमेध आदि शब्दों को लेकर गाय, घोड़ा, नर आदि की हिंसा का विस्तार से वर्णन किया।

शेष पेज 23 पर....

thearyasamaj.org

शोक-संदेश

श्री शिव प्रसाद आर्य, प्रधान आर्य समाज, तिनेरी एवं अध्यक्ष अनुमंडलीय स्वतंत्रता सेनानी संगठन, मसौढ़ी वर्तमान पता- रहमतगंज, मसौढ़ी, पटना।

श्री शिव प्रसाद ठाकुर का जन्म मसौढ़ी अनुमंडल अन्तर्गत जिला पटना सदर के तिनेरी ग्राम के अति निर्धन पविार मे हुआ था। इनके पिताजी का नाम स्व॰ बुलकन ठाकुर तथा माताजी का नाम स्व॰ मरछी देवी था। इनका जन्म 15 जनवरी 1914 में हुआ था। निर्धनता के कारण इन्होंने लोअर प्राईमरी तक की शिक्षा प्राप्त की थी। पढ़ाई छोड़ने के उपरान्त इन्होंने उस समय आर्य समाज दानापुर के सम्मेलन में घर से भाग कर भाग लिया। आर्य समाज के संस्थापक प्रातः स्मरणीय महर्षि दयानन्द सरस्वती की विचारधारा से ये इतने प्रभावित हुये कि इन्होंने आर्य समाज की सदस्यता ग्रहण कर ली। उस समय देश गुलाम था।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी एवं महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती दोनों ही देश की आजादी के पक्षधर थे। दोनों के विचारधारा में मात्र यही अन्तर था कि महर्षि स्वामी दयानन्द का मत था कि पहले मानव का निर्माण किया जाय तो आजादी स्वतः प्राप्त हो जायेगी, जबकि बापू का विचार था देश आजाद होने के उपरान्त मानव को मानव बना लिया जायेगा।

महर्षि के विचारों से प्रभावित होकर श्री शिव प्रसाद ठाकुर जो आर्य समाज की सदस्यता ग्रहण करने के उपरान्त शिव प्रसाद आर्य के नाम से सम्बोधित होने लगे। वे राष्ट्र की आजादी हेतु सक्रिय आन्दोलन में भाग लिये तथा अंग्रेजों से देश की आजादी कराने हेतु विगत दिनांक 08.11.1942 से 07.06.1943 तक फुलवारीशरीफ कैम्प जेल में बन्द रहे। इनकी पत्नी स्व॰ रामदुलारी देवी का देहान्त विगत् 04.04.2008 को हो गया। वे भी एक कुशल तथा सीधी सादी महिला थी।

आर्य समाज के विचारधारा के फलस्वरूप में महर्षि दयानन्द के अधूरे कार्य, अछूतोद्धार के क्रम में तिनेरी ग्राम के अनेको अछूत (हरिजन) बच्चों का यज्ञोपवित कराकर

thearyasamaj.org

उन्हें शिक्षा की प्रेरणा दी जिसके फलस्वरूप वहाँ के हरिजन आज भी अच्छे पद पर कार्यरत हैं। ये मृदुभाषी प्रखर समाजसेवी थे। इनके शब्दकोष में ना शब्द नहीं था। कई गरीब बच्चियों की शादी ये बाहरी व्यक्ति से सूद पर रूपया लेकर कराये तथा नहीं लौटाने पर ये अपने पैतृक जमीन को बेचकर लोगों का रूपया लौटाया।

इनके समाज सेवा के ही ज्वलन्त उदाहरण है कि इनकी बेटी शान्ति का विवाह था, उस दिन मण्डपाच्छादन था। इनके पुत्र भी श्री किशोरी मोहन विगत् 1968 में स्नातक की परीक्षा देने जहानाबाद गये हुये थे। गाँव के एक गंड़ेरी परिवार का लड़का पेड़ से गिर गया। ये बेटी के मण्डपाच्छादन कार्य को छोड़कर उसे अस्पताल लेकर चले गये।

इसी तरह एक दूसरा उदाहरण है कि इनके पिता जी का देहावसान हो गया था तथा उनका दाह-संस्कार कर लौट रहे थे इसी बीच हैजा से अनेकों व्यक्ति बिमार हो गये, ये सारा कार्य अपने पुत्र किशोरी जी पर छोड़कर लोगों को अस्पताल पहुँचाने चले गये।

गरीबों की सेवा में इतने तल्लीन रहते थे कि किसी भी आदमी को बिमारी की अवस्था में चिकित्सक तक पहुँचाने का कार्य वे इस उम्र में भी करते थे।

पूरे राष्ट्र में पूर्ण गोहत्या बन्दी के लिये ये प्रथम बार बम्बई में सत्याग्रह करने के क्रम में एक माह की जेल यात्रा सही तथा इसके बाद पटना में शाहगंज मुहल्ला में कसाई खाने पर धरना देने में जेल जाना पड़ा।

स्वतंत्रता सेनानी के सम्मान राशि से एक बड़ा भाग बचाकर तथा कुछ समाज के प्रतिष्ठित लोगों से दान प्राप्त कर तिनेरी ग्राम में लगातार दस वर्षों तक नेत्र शिविर लगाकर गरीबों के नेत्र के ऑपरेशन कुशल चिकित्सकों द्वारा मुफ्त में करा कर उनके भोजन, आवास, दवा एवं चश्मा की व्यवस्था निःशुल्क करते रहे।

प्रत्येक वर्ष जाड़े की ऋतु में प्रायः गरीबों को कम्बल तथा वस्त्र का निःशुल्क वितरण करते थे। इस तरह से समाज सेवा कर एक अनूठा मिशाल कायम किया। इनके द्वारा किये गये कार्यों से युवा पीढ़ी को प्रेरणा लेनी चाहिये। श्री आर्य का जीवन सादा एवं विचार उच्चकोटि का आजीवन रहा है। इनका निधन दिनांक : 28.10.2014 को हो गया। इन्होंने अपने पीछे एक पुत्र किशोरी मोहन, दो पुत्री शान्ति देवी एवं मनोरमा देवी दो पौत्र मुन्ना कुमार एवं जैनेन्द्र कुमार तथा तीन प्रपौत्र एवं चार प्रपौत्रियाँ छोड़ गये।

thearyasamaj.org

आर्य समाज, दानापुर का 136वाँ वार्षिकोत्सव सम्पन्न

आर्य समाज दानापुर का 136वॉ वार्षिकोत्सव स्थानीय डी० ए० वी० इन्टर स्कूल, दानापुर के प्रांगण में दिनांक 27 से 30 सितम्बर 2014 तक हर्षोल्लास के बीच सम्पन्न हो गया। इसके पूर्व 21 सितम्बर 2014 को यजुर्वेद पारायण महायज्ञ और वेद कथा का आयोजन श्री मद्यानन्द अनाथालय दानापुर के प्रांगण में आरम्भ हुआ। यज्ञ के ब्रह्मा और वेद कथा के आचार्य पं० हरिशंकर अग्निहोत्री थे। इसमें आर्य सदस्यों ने यज्ञमान के रूप में भाग लिया और बड़ी संख्या में धर्म प्रेमी सज्जनों ने कथा में वैदिक विचार धारा का श्रवण किया।

दिनांक 27 सितम्बर को प्रात: 9 बजे पं० अग्निहोत्री जी ने ओइम् ध्वज फहराया। उन्होंने ओइम् ध्वज की महत्ता और सन्देश की चर्चा की। डी० ए० वी० स्कूल के सचिव श्री सत्यदेव प्रसाद गुप्त ने भी अपने विचार व्यक्त किये। उसी दिन अपराह्न 2.30 बजे आर्य समाज की विशाल शोभा-यात्रा विद्यालय प्रांगण से निकली जिसका नेतृत्व सभा प्रधान श्री गंगा प्रसाद, मंत्री श्री रमेन्द्र कुमार गुप्ता, कोषाध्यक्ष विद्याभूषण, वेद प्रकाश, वलदेव प्रसाद, रामबाबू प्रसाद, सुरेन्द्र कुमार सिन्हा, सुरेश प्र० गुप्ता, सनिश्वर प्रसाद, विजय कुमार गुप्ता, प्रचार्य श्री उमेश प्रसाद जी ने किया। इसमें विद्यालय के छात्रों सहित एन० सी० सी०, ए० सी० सी०, भारत स्काउट, आर्य वीर दल, बैण्ड पार्टी तथा अन्य विद्यालयों के छात्र/छात्राएँ शामिल थी। संध्या 7 बजे वेद सम्मेलन को दिल्ली के पं० वेद प्रकाश श्रोत्रिय आगरा के पं० हरिशंकर अग्निहोत्री, पं० दयानन्द सत्यार्थी, पं० सत्यप्रकाश आर्य ने संबोधित किया। समारोह की अध्यक्षता श्री वेद प्रकाश जी ने किया। दिनांक 28 सितम्बर को आर्य महिला सम्मेलन में श्रीमती आशा सिन्हा ने महिलाओं की समस्याओं और उसके निराकरण पर प्रकाश डाला। श्रीमती सुदेश आर्या (दिल्ली) ने अपने भजनोपदेश के माध्यम से बताया कि महर्षि दयानन्द का महिलाओं के उत्थान हेतु किये गए कार्यो का देश ऋणि रहेगा। अध्यक्ष पद से बोलते हुए श्रीमती उर्मिला प्रकाश ने कन्याभ्रूण हत्या, दहेज प्रथा, महिला अत्याचार तथा अन्य कुरीतियों को दूर कर स्वस्थ समाज बनाने की अपील की। शिक्षा सम्मेलन, सामाजिक क्रान्ति सम्मेलन का भी आयोजन किया गया जिसका मंच संचालन श्री नलदेव प्रसाद एवं अध्यक्षता सुरेश प्र० गुप्त और एम विशुन सिंह ने किया। आर्य वीर दल सम्मेलन विशेष आकर्षण का केन्द्र था। बच्चों द्वारा किया गया करतव, व्यायाम तथा कला कौशल का प्रदर्शन सराहनीय था। इस अवसर

thearyasamaj.org

आर्य समाज दानापुर का 136वाँ वार्षिकोत्सव स्थानीय डी० ए० वी० इन्टर स्कूल, दानापुर के प्रांगण में दिनांक 27 से 30 सितम्बर 2014 तक हर्षोल्लास के बीच सम्पन्न हो गया। इसके पूर्व 21 सितम्बर 2014 को यजुर्वेद पारायण महायज्ञ और वेद कथा का आयोजन श्री मद्यानन्द अनाथालय दानापुर के प्रांगण में आरम्भ हुआ। यज्ञ के ब्रह्मा और वेद कथा के आचार्य पं० हरिशंकर अग्निहोत्री थे। इसमें आर्य सदस्यों ने यज्ञमान के रूप में भाग लिया और बड़ी संख्या में धर्म प्रेमी सज्जनों ने कथा में वैदिक विचार धारा का श्रवण किया।

दिनांक 27 सितम्बर को प्रातः 9 बजे पं० अग्निहोत्री जी ने ओइम् ध्वज फहराया। उन्होंने ओइम् ध्वज की महत्ता और सन्देश की चर्चा की। डी० ए० वी० स्कूल के सचिव श्री सत्यदेव प्रसाद गुप्त ने भी अपने विचार व्यक्त किये। उसी दिन अपराह्न 2.30 बजे आर्य समाज की विशाल शोभा-यात्रा विद्यालय प्रांगण से निकली जिसका नेतृत्व सभा प्रधान श्री गंगा प्रसाद, मंत्री श्री रमेन्द्र कुमार गुप्ता, कोषाध्यक्ष विद्याभूषण, वेद प्रकाश, वलदेव प्रसाद, रामबाबू प्रसाद, सुरेन्द्र कुमार सिन्हा, सुरेश प्र० गुप्ता, सनिश्वर प्रसाद, विजय कुमार गुप्ता, प्रचार्य श्री उमेश प्रसाद जी ने किया। इसमें विद्यालय के छात्रों सहित एन० सी० सी०, ए० सी० सी०, भारत स्काउट, आर्य वीर दल, बैण्ड पार्टी तथा अन्य विद्यालयों के छात्र/छात्राएँ शामिल थी। संध्या 7 बजे वेद सम्मेलन को दिल्ली के पं० वेद प्रकाश श्रोत्रिय आगरा के पं० हरिशंकर अग्निहोत्री, पं० दयानन्द सत्यार्थी, पं० सत्यप्रकाश आर्य ने संबोधित किया। समारोह की अध्यक्षता श्री वेद प्रकाश जी ने किया। दिनांक 28 सितम्बर को

भगवान हमपर दया करो

दया करो भगवान् हम पर दया करो।
हे प्रभु कृपानिधान हम पर दया करो।।
दया करो भगवान्..........।।

हम सब आये-शरण तुम्हारी।
सुन लो भगवन् विनय हमारी।।
दो बुद्धि का दान, हम पर दया करो।
हे प्रभु कृपानिधान...........।।

शुभ कर्मों में मन को लगायें।
दुष्कर्मों से चित को हटायें।।
हो सबका कल्याण, हम पर दया करो।
हे प्रभु कृपानिधान...........।।

तेरी भक्ति में तन और मन हो।
शुद्ध सरल सबका जीवन हो।।
जीवन बने महान्, हम पर दया करो।
हे प्रभु कृपानिधान.........।।

सकल विश्व को आर्य बना दें।
पावन वैदिक ज्योति जगा दें।।
करें वेद का ज्ञान हम पर दया करो।
हे प्रभु कृपानिधान..........।।

thearyasamaj.org

समाचार

तीन दिवसीय प्रान्तीय आर्य महासम्मेलन पटना, बिहार में उत्साहपूर्वक सम्पन्न

बिहार के प्रत्येक क्षेत्र से प्रतिनिधियों एवं कार्यकर्त्ताओं का भारी संख्या में सम्मिलन

जनता की भलाई से जुड़े विषयों पर बिहार में आर्यसमाज को कार्य आगे बढ़ाना चाहिए- महाशय धर्मपाल

शोभायात्रा ने कराया लम्बे समय पर पटना की सड़कों को आर्यसमाज की शक्ति का दिग्दर्शनः लम्बी शोभायात्रा और ओ३म् के ध्वजों से पट गया था पटना।

बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा के ओर से आर्य महा सम्मेलन का भव्य आयोजन पटना में किया गया जिसमें बिहार राज्य के सभी जिलों से 200 आर्य समाजों के हजारों प्रतिनिधियों एवं अन्य राज्यों के आर्य समाजों के अनेक प्रतिनिधियों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया। कार्यक्रम महासम्मेलन के प्रथम दिवस 8 अक्टूबर 2014 प्रातः 8 बजे से 1 बजे तक यज्ञ एवं भजन का कार्यक्रम चला। अपराह्न 2 बजे आर्य प्रतिनिधि सभा बिहार के प्रधान **श्री गंगा प्रसाद जी, मन्त्री श्री रमेन्द्र गुप्ता जी** व **कोषाध्यक्ष श्री सत्यदेव गुप्ता जी** बंगाल एवं झारखण्ड से दिल्ली एवं अन्य राज्यों से आये हजारों आर्य महानुभावों की उपस्थिति से जुलूस ने विशाल रूप धारण कर लिया जो 4 कि.मी. की यात्रा कर अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँचा। यह झाँकी अद्भूत एवं ऐतिहासिक थी जिसमें ओ३म् की ध्वज पताकाओं एवं रंग-बिरंगे सजे हुए वाहनों से नगर का वातावरण वासन्तीय बना हुआ था। शोभायात्रा ने लम्बे समय के अन्तराल पर पटना के सड़कों को आर्य समाज की शक्ति और सामर्थ्य का दिग्दर्शन कराया। जिसका असर जन-मानस के हृदयों पर लम्बे समय तक छाया रहेगा।

महासम्मेलन के दूसरे दिन प्रातःकाल यज्ञ के उपरान्त आर्य जगत के प्रसिद्ध समाज सेवी दानवीर महाशय धर्मपाल जी आर्य (M.D.H.) के कर-कमलों द्वारा ध्वजारोहण हुआ। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के उपप्रधान श्री सुरेशचन्द्र अग्रवाल जी के स्वागत भाषण से कार्यक्रम का शुभारम्भ हुआ जिसमें उन्होंने बिहार आर्य समाजों के द्वारा आर्य समाज के आन्दोलन में दिए गए योगदान को महत्त्वपूर्ण बताया। जिसका सुखद् परिणाम

thearyasamaj.org

सम्मेलन में दृष्टिपात हो रहा है। भारत के प्रसिद्ध मूर्धनय विद्वानों में शुमार श्री वेद प्रकाश श्रोत्रिय का रहस्य पूर्ण उद्‌बोधन, श्रीमती, स्वदेश आर्या, डा० ऋचा योगमयी श्री व्यास नन्दन शास्त्री, विनोद शास्त्री एवं नवल किशोर शास्त्री सरीखे विद्वानों ने वैदिक विचारों को जन मानस तक पहुँचाने का आह्वान किया। भजनोंपदेशक दयानन्द सत्यार्थी ने मधुर संगीत से ज्ञान व मनोरंजन मिश्रण प्रस्तुत किया। कार्यक्रम के तीसरे दिन शिक्षा सम्मेलन एवं राष्ट्र रक्षा-सम्मेलनों का आयोजन हुआ जिसके मुख्य अतिथि क्षेत्रीय प्रचारक श्री स्वान्त रंजन जी उपस्थित हुए। महाशय धर्मपाल जी ने ऋषिवर के सपनों को साकार करने के लिए तन-मन-धन से संलग्न रहने का आह्वान किया। और सुझाव दिया कि- जनता की भलाई से जुड़े विषयों पर बिहार में आर्य समाज को कार्य आगे बढ़ाने में पूर्ण पुरूषार्थ करना चाहिए जिससे समाज और उन्नति को प्राप्त हो। दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के वरिष्ठ उपप्रधान श्री धर्मपाल आर्य जी ने आर्य शिक्षा केन्द्रों को सशक्त बनाने और वैदिकता से सीधा जोड़ने का आह्वान किया जिसमें वैदिक ज्ञान का ओत-प्रोत बालक के जीवन में प्रवाहित होकर समाज का कल्याण करें। श्री रमेन्द्र गुप्त जी ने युवा कार्यकर्ताओं एवं महिलाओं को प्रेरित करते हुए कहा कि- उन्हें आर्य समाज में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करनी होगी तथा समाज उत्थान के कार्यों में रूचि बढ़ानी होगी जिससे आर्य समाज नई बुलन्दियों पर पहुंच सके क्योंकि युवा ही राष्ट्र की रीढ़ होती है। सम्मेलन में श्री सुरेश शास्त्री, स्वदेश आर्य, श्री विनय आर्य महामन्त्री (दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा) श्री भारत भूषण त्रिपाठी एवं उपस्थित अनेक विद्वानों ने अपने विचार आर्य समाज के उत्थान, प्रचार व प्रसार के लिए प्रकट किए। अन्त में आर्य प्रतिनिधि सभा बिहार के प्रधान श्री गंगा प्रसाद जी ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि बिहार राज्य में ऐसा अद्‌भुत महासम्मेलन 45 वर्षों के पश्चात् हुआ जिसको एक ऐतिहासिक कार्यक्रम कहा जाए तो अतिश्योक्ति न होगी। इस प्रकार के कार्यक्रमों से आर्य समाज का संगठन फिर से उन्नति को प्राप्त होगा, बिहार के प्रत्येक क्षेत्र से प्रतिनिधियों एवं कार्यकर्त्ताओं का ऐसा भारी संख्या में सम्मिलित उत्साह को बढ़ाने वाला और देश में अपने अस्तित्व का बोध कराने वाला है। उन्होंने सभी आगन्तुकों विद्वानों एवं महाशयों का हृदय से धन्यवाद किया। ●

thearyasamaj.org

गुरुकुल महाविद्यालय वैद्यनाथधाम देवघर (झारखण्ड) का जीर्णोद्धार हेतु शिलान्यास

पब्लिक सेवा न होने के कारण निजी हवाई जहाज से गुरुकुल देवघर पहुंचे महाशय जी

महाशय धर्मपाल जी आर्य अपने शिष्ट मण्डल के साथ बिहार के देवघर में वैद्यनाथ धाम गुरूकुल आश्रम में पहुँचे। (और वहाँ के सभी पदाधिकारियों से साक्षात्कार कर) शिलान्यास समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित अपने उद्‌बोधन में महर्षि के सपनों को पूरा करने के लिए अपने इरादों को प्रकट किया। महाशय जी ने वेदोच्चारण के साथ विद्यालय भवन का शिलान्यास किया। जिस गुरूकुल का उद्‌घाटन 1912 ई. में हुआ था वह आज मृत पड़ा है। महाशय जी दु:ख प्रकट करते हुए कहा कि- यह राष्ट्र की अमूल्य धरोहर है इसकी रक्षा और परिवर्द्धन करना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है। उन्होंने कहा कि- आर्य समाज के अन्तर्गत वैदिक शिक्षा के केन्द्र रहे गुरूकुल महाविद्यालयों का वर्तमान में मृत होना हमारे लिए अशोभनीय एवं दु:खद् घटना तो है ही अपितु नई पीढ़ी के लिए भी विनाशकारी है। अत: हमें गुरुकुलीय पद्धति को संचालित करने के लिए और बालकों के जीवन को एक नई दिशा देने के लिए कठिन परिश्रम करना ही होगा। महाशय जी ने भावुक मुद्रा में घोषणा की कि- गुरूकुल का पुन: जीर्णोद्वार तो होगा ही साथ ही इस परिसर में एक अत्याधुनिक नए विद्यालय का निर्माण भी किया जाएगा। जिसमें बालक सभी आधुनिक विषयों के ज्ञाता बनेंगे और देश का नाम रोशन करेंगे। विद्यालय तो तभी चलेगा जब प्रथम सत्र सामान्य एवं द्वितीय सत्र में गरीब बालकों की शिक्षा हेतु व्यवस्था होगी। महाशय जी ने अपनी पवित्र आय से एक करोड़ रुपये धनराशि की तथा 25 लाख रुपये की धनराशि से प्राचीन गुरूकुल का जीर्णोद्धार भी किया जाएगा। महाशय जी के इस वक्तव्य का उपस्थित जन समुदाय ने स्वागत किया तथा सभी ने भूरि-भूरि प्रशंसा की। कार्यक्रम की अध्यक्षता पूर्व मन्त्री कृष्णानंद झा ने इस कार्य को राष्ट्र उन्नति के लिए मील का एक पत्थर बताया जिससे लाखों बालकों के भविष्य का निर्माण होगा। इस शुभ अवसर पर श्री भारत भूषण त्रिपाठी, सुरेश चन्द्र अग्रवाल, श्री धर्मपाल आर्य, श्री खुशहाल चन्द्र श्री नरेश अग्रवाल, डा. संजय, श्री राजीव आर्य एवं विनय आर्य आदि गणमान्य व्यक्ति उपस्थित रहे।

thearyasamaj.org

को आर्य समाज मंदिर में एक सार्वजनिक सभा की गई। काफी जन–सैलाब उमड़ पड़ा। भाई जवाहर सिंह जी ने सभा की कार्यवाही प्रारम्भ की। फिर गुरूदत्त ने ऋषि दयानन्द के बिमारी के कारणों पर प्रकाश डाला और जिस धैर्य और गम्भीरता से शांत चित्त ऋषि ने मृत्यु का सामना किया, उसकी चर्चा की। गुरुदत्त ने जिस भावपूर्ण एवं हृदयद्रावक शब्दों में ऋषिवर के स्वर्गवास होने का वृत्तान्त सुनाया, उससे कहने और सुनने वालों की आँखों से गंगा–यमुना बह निकली। पाषाण हृदय भी पिघल गये। गुरुदत्त ने ही डी. ए. वी. स्कूल व कॉलेज के रूप में ऋषि का स्मारक बनाने का प्रस्ताव रखा, उसे जनता बहुत पसन्द किया तथा सर्वसम्मति से स्वीकार किया।

आर्य जन पूरी श्रद्धा से अपने आचार्य का स्मारक बनाने में जुट गये। शोक का स्थान उत्साह ने ले लिया। पं॰ गुरुदत्त ने बताया कि वैदिक साहित्य में सत्य विद्यायें भरी पड़ी हैं अतः आध्यात्मिक एवं भौतिक ज्ञान और जातीय स्मिता के लिये दयानन्द एंग्लो वैदिक कॉलेज की स्थापना आवश्यक है। संस्था के संचालन के लिये जब दान की अपील की गई तो धन की वर्षा होने लगी, महिलाओं ने अपने आभूषण तक दान दे दिये।

इस प्रस्तावित कॉलेज के प्रारूप सम्बन्धी एक परिपत्र में इसके मुख्य उद्देश्य– '' राष्ट्रीय तथा देशी भाषा के पठन–पाठन को प्रोत्साहित कर शिक्षित व अशिक्षित वर्ग में एक्य स्थापित करना, वैदिक संस्कृत के अध्ययन को अनिवार्य करके चारित्रिक एवं आध्यात्मिक सच्चाईयों का प्रसार करना, छात्रों में संयम जीवन पद्धति द्वारा नियमित सुदृढ़ सक्षम आदतों का निर्माण करना– अंग्रेजी साहित्य की ठोस जानकारी को प्रोत्साहित करना तथा भौतिक एवं क्रियात्मक विज्ञान का ज्ञान देकर देश में भौतिक समृद्धि पैदा करना । बनाये गये थे। आर्य समाज लाहौर के निमंत्रण पर 31 जनवरी 1886 को लाहौर में एकत्रित हुए लाहौर, अमृतसर मुलतान, गुजरांवाला लुधियाणा तथा रोहतक की छः प्रमुख आर्य समाजों के नौ प्रतिनिधियों द्वारा ये नियम पारित कर दिये गये। साथ ही दयानन्द एंग्लो वैदिक कॉलेज ट्रस्ट एण्ड सोसाइटी का औपचारिक रूप से गठन कर दिया गया।

अब कॉलेज रुपी यज्ञ के लिये हव्य सामग्री का संग्रह किया जा रहा था। चारो ओर व्यापक उत्साह था। जन साधारण ने अपने थैलियों के मुँह खोल दिये थे। नव–स्नातक हंसराज जी ने भी इस यज्ञ में भाग लेना चाहा। सोच, क्या यह धन की सर्वोत्तम हव्य पदार्थ है? क्या इससे मूल्यवान अन्य कोई हवि है? उत्तर मिला है, क्यों नहीं। है तो यह दुर्लभ मनुष्य जीवन, पर कोई दे भी? बस! हंसराज जी ने यह पदार्थ स्वयं भेंट करने की ठान ली। अपने बड़े भाई मुल्कराज से सलाह की, उन्होंने भी थपकी दे दी, ''बहुत शुभ कार्य है, इन्हें तुम अपना जीवन दो। मैं तुम्हें अपनी कमाई का आधा भाग दूंगा। लक्ष्य पवित्र था। दोनों की भावनाएँ शुभ थीं। बस निश्चय होते क्या देरी लगती । हंसराज जी की आखों में उन दिनों कुछ तकलीफ थी। अतः मुल्क राज जी ने हंसराज जी की ओर से आर्य समाज लाहौर के प्रधान को नवम्बर 1885 में पत्र लिख दिया– ''दयानन्द स्कूल खोलने पर मैं अवैतनिक हैडमास्टर बनने के लिये तैयार हूँ, इस पत्र पर हंसराज जी ने हस्ताक्षर कर दिये। बस! फिर क्या था आर्यों में नव जीवन का संचार हो गया।

आखिर प्रतीक्षा की घड़ियाँ समाप्त हुई और **1 जून 1886 मंगलवार को आर्य समाज में मंदिर गली बिच्छो वाली में एक सार्वजनिक सभा करके डी.ए.वी. स्कूल की स्थापना कर दी गई।** हंसराज जी को हेड मास्टर और दुर्गा प्रसाद सैकिण्ड मास्टर नियुक्त हए।

यहीं से महात्मा हंसराज जी के जीवन की कहानी प्रारम्भ होती है, उनमें त्याग और सेवा के सुप्त, भाव जाग उठे। ऋषि की स्मृति को अमर बनाने के लिये जीवन दान का संकल्प ले लिया। उनकी

thearyasamaj.org

देख–रेख मे स्कूल बड़ी तेजी से उन्नति के शिखर पर पहुँच गया। अपनी लगन, परिश्रम, ईमानदारी, सादगी, सरलता, मितययिता और ऋषि भक्ति से उन्होंने D.A.V. संस्थान को विशाल वट वृक्ष के रूप में परिवर्तित कर दिया। इस उन्नति और प्रगति के पीछे, महात्मा हंसराज जी के तप–त्याग–तपस्या साधना का योगदान रहा।

महात्मा हंसराज जी का व्यक्तिव और कृतित्व चुमबकीय था। सादा जीवन और उच्च विचारों वाले दुबले–पतले और खद्दर पहनने वाले, सिर पर पगड़ी धारण करने वाले वे महामानव त्याग–तपस्या और सेवा के कारण महात्मा कहलाये। आर्य समाज के विचारों के प्रचार–प्रसार का तथा सेवा और परोपकार का उन्होंने जो आजीवन व्रत निभाया, वह आज की अधिकारियों, व्यवस्थापकों एवं संचालकों के लिये प्रकाश–स्तम्भ का कार्य कर सकता है। जो महात्मा हंसराज जी सभा व संगठन की कलम से व्यक्तिगत पत्र तक नहीं लिखते थे, इतना ऊँचा आदर्श जिन्होंने दिया हो, जो सारा जीवन किराये के मकान में व्यतीत कर रहे हों, जिन्होंने अपने और परिवार के आराम के लिये कभी सोचा ही न हो किन्तु वह महापुरूष तो फकीरी में फटे पैबन्द लगे कम्बल को ओढ़कर ही संतुष्ट बना रहा। वे कॉलेज के प्रिंसपल पद को, सभा के प्रधान पद को और होस्टल के वार्डन पद को संभालते हुए विद्यार्थियों को धर्म शिक्षा स्वयं पढ़ाते थे। विद्यार्थियों के धार्मिक जीवन का पूरा ध्यान रखते थे। उनके क्रियात्मक जीवन से प्रभावित होकर बहुत, से नौजवानों में आजीवन सेवा का भाव जाग उठा। वे जिधर चले उधर ही जनता और सफलता उभड़ पड़ी। जनता ने श्रद्धा भावना से उनकी झोली भर दी। जनता को विश्वास था उनका धन उचित और श्रेष्ठ कार्य में लगेगा। उन्होंने संसार को विद्या का अपूर्व दान दिया। महात्मा जी को आर्य समाज के प्रचार प्रसार तथा प्रभाव का सदा, ध्यान रहता था। वे वैदिक सिद्धांतों के और वेद की शिक्षाओं के प्रबल समर्थक एवं प्रचारक थे। उनके वाणी में जादू था, इसका प्रमाण इस सच्चाई से ज्ञात होता है। जालन्धर में आर्य समाज का कार्यक्रम होता था। आर्य समाज लाहौर से वक्ता मांगे गये एतदर्थ गुरुदत्त विद्यार्थी और हंसराज जी को जालंधर भेजा गया। महात्मा मुन्सीराम अपने साथियों सहित स्वागतार्थ स्टेशन पर पहुँचे। छोटी आयु के साधारण से दुबले–पतले, दो विद्यार्थियों को देखकर सब सोचने लगे कि आर्य समाज लाहौर ने यह क्या मजाक किया। ये क्या भाषण देंगे प्रबुद्ध लोगों के समक्ष! परन्तु जब हंसराज और गुरुदत्त जी ने क्रमशः उर्दू तथा अंग्रेजी में ऋषिवर का गुणगान किया तो सब विस्मित रह गए। उनकी विद्वता के आगे सभी आर्यजन नतमस्तक है।

महात्मा हंसराज जी राष्ट्रीयता के प्रबल समर्थक थे। उनका ध्येय और प्रयास रहता था कि जो व्यक्ति हमारी शिक्षण संस्था से निकले, उस पर हमारी संस्था की छाप हो, उसकी अलग पहचान हो। वह जहाँ भी जाये, उसे रहन–सहन बोल–चाल और खान–पान में कुछ अलग विशेषता झलकती हो। उस पर वैदिक विचारों का प्रभाव हो। वह सच्चे अर्थों में श्रेष्ठ मानव व नागरिक बने।

पं. संजय सत्यार्थी

प्रेषक :
सभा-मंत्री
बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा
श्री मुनीश्वरानन्द भवन, नयाटोला
पटना-८०० ००४

सेवा में,
श्री/मेसर्स......................
मो०......................
पो०......................
जिला......................

मुद्रित सामग्री

(प्रेषिती के न मिलने पर यह अंक प्रेषक को ही लौटा दें।)

स्वत्वाधिकारी, बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा,, श्री मुनीश्वरानन्द भवन, नयाटोला, पटना-4 के लिए श्री रमेन्द्र कुमार गुप्ता (मंत्री) द्वारा जय उमा प्रिन्टर्स, पटना द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।